





I. N. J.  
DISSERTATIO INAVGVRALIS  
DE  
**DEO COMMISSIS,**

**Was Gott befohlen wird/** 1712/24  
QVAM  
DIRIGENTE SVMMO RERVM ARBITRO  
RECTORE MAGNIFICENTISSIMO  
SERENISSIMO PRINCIPE AC DOMINO  
DOMINO  
**GVILIELMO HENRICO,**

DVCE SAXONIAE, IVLIACI, CLIVIAE AC MONTIVM,  
ANGARIAE, WESTPHALIAE ET RELIQUA.

**IN ALMA SALANA**  
ITA DECERNENTE ILLVSTRI JCTORVM ORDINE  
PRAESIDE  
VIRO ILLVSTRI ATQVE MAGNIFICO  
DOMINO  
**CHRISTIANO WILDVOGELIO,**  
JCTO CONSUMMATISSIMO,  
CONSILIARIO SAXO-ISENACensi INTIMO, CVRIÆ PROV. ET  
SCAB. NEC NON FACVLAT. JVRID. ASSESSORE GRAVIS-  
SIMO, VT ET ANTECESSORE CELEBERRIMO,  
MAECENATE PIA DEVOTIONE AD CINERES COLENDO

**PRO LICENTIA**  
SVMMOS IN UTROQUE JVRE HONORES CAPESSENDI  
D. XVI. IULII M. DCC. XII.  
PLACIDAE DISQVISITIONI EXPOSIT  
**VLRICVS MARBACHIVS, ARGENTORAT.**

IENAE, LITTERIS MULLERIANIS.

1  
2  
3  
4  
5  
6  
7  
8  
9  
10  
11  
12  
13  
14  
15  
16  
17  
18  
19  
20  
21  
22  
23  
24  
25  
26  
27  
28  
29  
30  
31  
32  
33  
34  
35  
36  
37  
38  
39  
40  
41  
42  
43  
44  
45  
46  
47  
48  
49  
50  
51  
52  
53  
54  
55  
56  
57  
58  
59  
60  
61  
62  
63  
64  
65  
66  
67  
68  
69  
70  
71  
72  
73  
74  
75  
76  
77  
78  
79  
80  
81  
82  
83  
84  
85  
86  
87  
88  
89  
90  
91  
92  
93  
94  
95  
96  
97  
98  
99  
100  
101  
102  
103  
104  
105  
106  
107  
108  
109  
110  
111  
112  
113  
114  
115  
116  
117  
118  
119  
120  
121  
122  
123  
124  
125  
126  
127  
128  
129  
130  
131  
132  
133  
134  
135  
136  
137  
138  
139  
140  
141  
142  
143  
144  
145  
146  
147  
148  
149  
150  
151  
152  
153  
154  
155  
156  
157  
158  
159  
160  
161  
162  
163  
164  
165  
166  
167  
168  
169  
170  
171  
172  
173  
174  
175  
176  
177  
178  
179  
180  
181  
182  
183  
184  
185  
186  
187  
188  
189  
190  
191  
192  
193  
194  
195  
196  
197  
198  
199  
200  
201  
202  
203  
204  
205  
206  
207  
208  
209  
210  
211  
212  
213  
214  
215  
216  
217  
218  
219  
220  
221  
222  
223  
224  
225  
226  
227  
228  
229  
230  
231  
232  
233  
234  
235  
236  
237  
238  
239  
240  
241  
242  
243  
244  
245  
246  
247  
248  
249  
250  
251  
252  
253  
254  
255  
256  
257  
258  
259  
260  
261  
262  
263  
264  
265  
266  
267  
268  
269  
270  
271  
272  
273  
274  
275  
276  
277  
278  
279  
280  
281  
282  
283  
284  
285  
286  
287  
288  
289  
290  
291  
292  
293  
294  
295  
296  
297  
298  
299  
300  
301  
302  
303  
304  
305  
306  
307  
308  
309  
310  
311  
312  
313  
314  
315  
316  
317  
318  
319  
320  
321  
322  
323  
324  
325  
326  
327  
328  
329  
330  
331  
332  
333  
334  
335  
336  
337  
338  
339  
340  
341  
342  
343  
344  
345  
346  
347  
348  
349  
350  
351  
352  
353  
354  
355  
356  
357  
358  
359  
360  
361  
362  
363  
364  
365  
366  
367  
368  
369  
370  
371  
372  
373  
374  
375  
376  
377  
378  
379  
380  
381  
382  
383  
384  
385  
386  
387  
388  
389  
390  
391  
392  
393  
394  
395  
396  
397  
398  
399  
400  
401  
402  
403  
404  
405  
406  
407  
408  
409  
410  
411  
412  
413  
414  
415  
416  
417  
418  
419  
420  
421  
422  
423  
424  
425  
426  
427  
428  
429  
430  
431  
432  
433  
434  
435  
436  
437  
438  
439  
440  
441  
442  
443  
444  
445  
446  
447  
448  
449  
450  
451  
452  
453  
454  
455  
456  
457  
458  
459  
460  
461  
462  
463  
464  
465  
466  
467  
468  
469  
470  
471  
472  
473  
474  
475  
476  
477  
478  
479  
480  
481  
482  
483  
484  
485  
486  
487  
488  
489  
490  
491  
492  
493  
494  
495  
496  
497  
498  
499  
500  
501  
502  
503  
504  
505  
506  
507  
508  
509  
510  
511  
512  
513  
514  
515  
516  
517  
518  
519  
520  
521  
522  
523  
524  
525  
526  
527  
528  
529  
530  
531  
532  
533  
534  
535  
536  
537  
538  
539  
540  
541  
542  
543  
544  
545  
546  
547  
548  
549  
550  
551  
552  
553  
554  
555  
556  
557  
558  
559  
550  
551  
552  
553  
554  
555  
556  
557  
558  
559  
560  
561  
562  
563  
564  
565  
566  
567  
568  
569  
560  
561  
562  
563  
564  
565  
566  
567  
568  
569  
570  
571  
572  
573  
574  
575  
576  
577  
578  
579  
580  
581  
582  
583  
584  
585  
586  
587  
588  
589  
590  
591  
592  
593  
594  
595  
596  
597  
598  
599  
590  
591  
592  
593  
594  
595  
596  
597  
598  
599  
600  
601  
602  
603  
604  
605  
606  
607  
608  
609  
600  
601  
602  
603  
604  
605  
606  
607  
608  
609  
610  
611  
612  
613  
614  
615  
616  
617  
618  
619  
610  
611  
612  
613  
614  
615  
616  
617  
618  
619  
620  
621  
622  
623  
624  
625  
626  
627  
628  
629  
620  
621  
622  
623  
624  
625  
626  
627  
628  
629  
630  
631  
632  
633  
634  
635  
636  
637  
638  
639  
630  
631  
632  
633  
634  
635  
636  
637  
638  
639  
640  
641  
642  
643  
644  
645  
646  
647  
648  
649  
640  
641  
642  
643  
644  
645  
646  
647  
648  
649  
650  
651  
652  
653  
654  
655  
656  
657  
658  
659  
650  
651  
652  
653  
654  
655  
656  
657  
658  
659  
660  
661  
662  
663  
664  
665  
666  
667  
668  
669  
660  
661  
662  
663  
664  
665  
666  
667  
668  
669  
670  
671  
672  
673  
674  
675  
676  
677  
678  
679  
670  
671  
672  
673  
674  
675  
676  
677  
678  
679  
680  
681  
682  
683  
684  
685  
686  
687  
688  
689  
680  
681  
682  
683  
684  
685  
686  
687  
688  
689  
690  
691  
692  
693  
694  
695  
696  
697  
698  
699  
690  
691  
692  
693  
694  
695  
696  
697  
698  
699  
700  
701  
702  
703  
704  
705  
706  
707  
708  
709  
700  
701  
702  
703  
704  
705  
706  
707  
708  
709  
710  
711  
712  
713  
714  
715  
716  
717  
718  
719  
710  
711  
712  
713  
714  
715  
716  
717  
718  
719  
720  
721  
722  
723  
724  
725  
726  
727  
728  
729  
720  
721  
722  
723  
724  
725  
726  
727  
728  
729  
730  
731  
732  
733  
734  
735  
736  
737  
738  
739  
730  
731  
732  
733  
734  
735  
736  
737  
738  
739  
740  
741  
742  
743  
744  
745  
746  
747  
748  
749  
740  
741  
742  
743  
744  
745  
746  
747  
748  
749  
750  
751  
752  
753  
754  
755  
756  
757  
758  
759  
750  
751  
752  
753  
754  
755  
756  
757  
758  
759  
760  
761  
762  
763  
764  
765  
766  
767  
768  
769  
760  
761  
762  
763  
764  
765  
766  
767  
768  
769  
770  
771  
772  
773  
774  
775  
776  
777  
778  
779  
770  
771  
772  
773  
774  
775  
776  
777  
778  
779  
780  
781  
782  
783  
784  
785  
786  
787  
788  
789  
780  
781  
782  
783  
784  
785  
786  
787  
788  
789  
790  
791  
792  
793  
794  
795  
796  
797  
798  
799  
790  
791  
792  
793  
794  
795  
796  
797  
798  
799  
800  
801  
802  
803  
804  
805  
806  
807  
808  
809  
800  
801  
802  
803  
804  
805  
806  
807  
808  
809  
810  
811  
812  
813  
814  
815  
816  
817  
818  
819  
810  
811  
812  
813  
814  
815  
816  
817  
818  
819  
820  
821  
822  
823  
824  
825  
826  
827  
828  
829  
820  
821  
822  
823  
824  
825  
826  
827  
828  
829  
830  
831  
832  
833  
834  
835  
836  
837  
838  
839  
830  
831  
832  
833  
834  
835  
836  
837  
838  
839  
840  
841  
842  
843  
844  
845  
846  
847  
848  
849  
840  
841  
842  
843  
844  
845  
846  
847  
848  
849  
850  
851  
852  
853  
854  
855  
856  
857  
858  
859  
850  
851  
852  
853  
854  
855  
856  
857  
858  
859  
860  
861  
862  
863  
864  
865  
866  
867  
868  
869  
860  
861  
862  
863  
864  
865  
866  
867  
868  
869  
870  
871  
872  
873  
874  
875  
876  
877  
878  
879  
870  
871  
872  
873  
874  
875  
876  
877  
878  
879  
880  
881  
882  
883  
884  
885  
886  
887  
888  
889  
880  
881  
882  
883  
884  
885  
886  
887  
888  
889  
890  
891  
892  
893  
894  
895  
896  
897  
898  
899  
890  
891  
892  
893  
894  
895  
896  
897  
898  
899  
900  
901  
902  
903  
904  
905  
906  
907  
908  
909  
900  
901  
902  
903  
904  
905  
906  
907  
908  
909  
910  
911  
912  
913  
914  
915  
916  
917  
918  
919  
910  
911  
912  
913  
914  
915  
916  
917  
918  
919  
920  
921  
922  
923  
924  
925  
926  
927  
928  
929  
920  
921  
922  
923  
924  
925  
926  
927  
928  
929  
930  
931  
932  
933  
934  
935  
936  
937  
938  
939  
930  
931  
932  
933  
934  
935  
936  
937  
938  
939  
940  
941  
942  
943  
944  
945  
946  
947  
948  
949  
940  
941  
942  
943  
944  
945  
946  
947  
948  
949  
950  
951  
952  
953  
954  
955  
956  
957  
958  
959  
950  
951  
952  
953  
954  
955  
956  
957  
958  
959  
960  
961  
962  
963  
964  
965  
966  
967  
968  
969  
960  
961  
962  
963  
964  
965  
966  
967  
968  
969  
970  
971  
972  
973  
974  
975  
976  
977  
978  
979  
970  
971  
972  
973  
974  
975  
976  
977  
978  
979  
980  
981  
982  
983  
984  
985  
986  
987  
988  
989  
980  
981  
982  
983  
984  
985  
986  
987  
988  
989  
990  
991  
992  
993  
994  
995  
996  
997  
998  
999  
990  
991  
992  
993  
994  
995  
996  
997  
998  
999  
1000

**LVDOVICI MAGNI**

REGIS CHRISTIANISSIMI CONSILIARIO

V I R O

*PERILLVSTRI ATQVE EXCEL-  
LENTISSIMO*

D O M I N O

**JO. BAPTISTÆ  
DE KLINGLING,**

APVD ARGENTORATENSES PRÆ-  
TORI REGIO VNIVERSITATIS QVE

PROTECTORI

*EMINENTIBVS IN PVBLICVM MERITIS VNDI QVA QVE  
SPLENDIDISSIMO*

MEÆ PRIVATIM FAMILIAE

PATERNÆ PARITER MATERNÆ QVE PATRONO  
BENIGNISSIMO

*MÆCENATI MEO OPTIMO MAXIMO*

UT ET VIRIS

GRAVITATE MVNERVM  
MERITORVM IN PATRIAM AMPLITUDINE  
VIRTUTIS AC DOCTRINÆ EXCELLENTIA  
ILLVSTRBVS

INCLVTI LEGATI FRIDIANI

DOMINIS PRÆFECTIS

A JCTO CONSVMMATISSIMO

B. DOMINO

**JO. JACOBO FRIDIO,**

REIP. ARGENT, SYNDICO ET CONSILIARIO

QVI DVDVM VIVENDI IN HIS TERRIS FINEM FECIT  
BENE MERENDI NON FECIT  
TANQVAM TESTATORE PROVIDENTISSIMO  
DECLARATÆ OLIM VLTIMÆ VOLUNTATIS  
CONSERVATORIBVS ATQVE EXECVTORIBVS  
LONGE MERITISSIMIS

HOC QVICQVID EST THESIVM JVRIDICARVM  
IN AVGVRALIVM IN ARGUMENTVM SVBMISSÆ OBSER-  
VANTIAE GRATIQLVE ANIMI TESSERAM  
HVMILLIME OFFERO

TANTORVM NOMINVM

DEVOTISSIMVS CLIENS

**VLRICVS MARBACHIVS, ARGENTOR.**



## I. I.

## §. I.



Vmen aliquod existere æternum, a quo omnia, quæ videmus, dependent, quodue vniuersum mundum, hominesque in eo viuentes potentissime gubernat, naturalis ratio cuiilibet mortalium evidentissime demonstrat, quin & ab Ethnici sapientioribus fuit agnitus. Testatur id ipsum Cicero *Tuscul.* quest. i. dum firmissimum hoc, ait: adferri videtur, cur Deos esse credamus, quod nulla gens tam ferat, nemo omnium tam sit immanis, cuius mentem non imbuerit Deorum opinio. Multi de Deo pravis sentiunt, id enim viciose more effici solet, omnes tam esse vim & naturam diuinam arbitrantur. Consimile huic est, quod Seneca scribit, Epist. 117. Deos esse inter alia sic colligimus, quod omnibus de Diis opinio insita est: nec illa gens usquam est adeo extra leges moresque projecta, ut non aliquos Deos credat.

## A

## §. II.

¶ ( 2 ) ¶

§. II.

Supremum autem illud Numen, præter multiplices virtutes, quæ ornatur, summe iustum esse, in eo pariter omnes, qui recta ratione vtuntur, consentiunt. Id enim summa Dei perfectio, quæ eidem tribuitur, requirit, ita ut sine iustitia Deus a mente humana concipi nequeat. Spectatur vero hæc Numinis iustitia vel in ordine ad seipsum, quatenus Deus nihil vult, nec velle potest, nisi quod iustum est: vel in ordine ad alios, dum creaturis ratione prædictis iustitia sua conuenientes præscribit leges, atque secundum eas homines regit ac gubernat, bonis scilicet præmia, malis vero supplicia promerita decernens. Agnouerunt id itidem gentiles Poëtae, atque hinc Iustitiam Ioui perpetuo asfidiere tradiderunt, quam propterea Orpheus apud Stob. serm. 9. ita alloquitur:

--- *Quo etiam super Iouis principis sacro sedet folio,  
Coelius despiciens vitam mortalium in varias gentes diuisorum,*

*Iniutorum ultrix, suppliciis grauans iustis,  
Veritatis equalitate concilians dissimilia.*

*Omnia enim que mala mente homines committunt  
Temere, nimis concupiscentes malis consilis,  
Tu sola piacens, poenam sumis ab iniustis.*

*Hofis improborum, benevolia autem versaris cum iustis.*

Inculcant id ipsum scriptores Comici passim in scriptis suis, veluti cum Euripides in *Hecuba*: act. 5.

*Facinus, inquit: cruentum*

*Malorumque pestiferum iusticie obnoxium*

*Nec apud Deos evanescit, aut obliuioni intercidit.*

nec non Sophocles in *Oedip.* verb.

--- *Sed exigituris*

*Ipsos (Deos) respicere pios homines,*

E:

¶ (3) ¶

*Et impios quoque videre, neque adhuc quenquam  
Impiorum poenam diuinam effugisse.*

vid. plura apud Dn. Pfanner. in *System. Theolog. gentil.*  
*cap. 2. S. 24.*

§. III.

Iustitiam istam diuinæ naturæ propriam, exercet supremum Numen vel immediate, vel mediate. Mediate quidem quando Reges, Principes ac Magistratus constituit, quibus non curam solum ac obseruantiam legum & se conditarum, sed & ipsum regimen, ac tum decisionem rerum controuersiarum, tum animaduercionem in improbos demandat, vt sic isti vices ipsius Dei in mundo gerant, ipsumque Deum actionibus iustis representent. Et fane supremas potestates ab ipso Deo dependere, quin & quemlibet Magistratum, licet inferiorem & subordinatum, Dei esse ministrum, Scriptura sacra nos edocet, *ad Rom. Epist. cap. XIII. 4.* Id quod itidem firmissime fibi gentiles persuaserunt, dum non solum in creandis aut eligendis Magistratibus, Deorum suorum suffragia precibus expetierunt, vid. Cicero in *Orat. pro Muren.* sed & Principes suos post mortem Deorum numero adscripserunt, quin & viuos adhuc inter Deos coluerunt. Vosius *de Orig. Idololatr. lib. 3. cap. 16.*

§. IV.

Ex his iam liquido inferre licet, teneri Magistratus & judices a iustissimo Numine constitutos, omnes suas actiones eo dirigere, vt illæ sanctissimæ voluntati diuinæ, iustitiaeque & legibus sint conformes, adeoque non solum prohibere debeant ea, quæ iuri contrariantur; sed & in contemtores legum iustas poenas decernere easque seuerissime exequi. Nec enim Principis nomen meretur, qui iustitiae fines excedit. *can. 21. caus. 2. qu. 1.* Hinc laudi-  
bus

bus condignis merito euehitur Antiochus , Asiae Rex, qui omnibus regni sui vribus scriptissime traditur, quod si quid in litteris suo nomine exaratis , legibus aduersum contineretur , crederent subditi, id ignaro se scriptum fuisse , illique non obtemperarent. Gail. Obf. L. II. O. 58.  
n. 10. Et Anastasius Imp. in l. fin. C. si contr. ins. omnes cuiuscunque maioris vel minoris administrationis Reipublicae sua iudices prudentissime admonet, vt nullum rescriptum , nullam pragmaticam sanctionem , nullam sacram adnotationem , quae generali iuri aduersa esse videatur, in disceptationem cuiuslibet litigii proferri patientur. Sic enim demum nominis & officii sui mensuram adimplent , si iustitiam colant, neminique iniuriam inferri patientur.

## §. V.

Neque exercitium solum iustitiae eiusdemque administratio Magistribus superioribus incumbit, sed & cura condendarum legum, earundemque publicatio, vt subditi regulam habeant, ad quam vitam suam compontant, & quid ipsis agendum, aut omitendum sit, intelligant. Sunt quippe leges & constitutiones vinculum fortissimum, quo ciues inuicem constringuntur: sunt denique anima quasi & spiritus rerum publicarum, sine quo totum corpus quasi mortuum iacet, ac penitus putreficit. Optime hinc Leo Imperator in *Novella sua 19.* Quis leges, inquit: Reipublicae oculos esse dixerit, is profecto nibil inde ens pronunciaverit. Quemadmodum enim res maxime necessaria est animali non titubans oculus, ita & Reipubl. legum equus & rectus status. Nec dubium est, quin sicuti potestates mundanæ Deum autorem habent, ita earundem recte compositæ leges, ab ipso supremo Numine procedant, eandemque, quam diu nra iusiones, mereantur obseruantiam. Quam in rem Iohannes VIII. Pont. in  
cap.

can. fin. caus. 16. qu. 3. venerandas Romanas leges diuini-  
tus per ora piorum Principum esse promulgatas, asse-  
vere non dubitat.

## §. VI.

Vt ut vero Reges & Principes ab ipso Deo ad iusti-  
tiam promouēndam & administrandam constituti sint;  
sepius tamen euenit, vt illi a tramite iusti longe de-  
flecent, officii sibi demandati nullam rationem habeant,  
sed pro libitu suo agant, omniaque iura tam diuina-  
quam humana pessundent. E contrario quoque non  
nunquam accidit, vt optimi Principes legum sancta in  
vsum transferre haud valeant, aut saltem quædam ma-  
ioris boni causa permettere cogantur, quæ prohibenda  
suissent, adeoque nolentes quasi suo munere rite de-  
fungi nequeant: quibus casibus quid faciendum sit, tum  
subditis, quam ipsis Regentibus, non immerito ambi-  
gitur. Sane DEO hæc COMMITTENDA esse, nemo  
dubitat. Hanc enim vocem vulgi communem esse noui-  
mus. Ich muß es Gott befehlen/ idque solatii quam plurimis  
relinqui nouimus, vt DEO supremo iudici, omniumque  
potentissimo diribitori ea relinquant, quæ a mundanis  
potestatibus impetrare non possunt, ipsosque Magistra-  
tus ac iudices sepe ab his abstineant, quibus tollendis  
semet impares quadantenus esse sentiunt.

## §. VII.

Cum igitur frequentissima hæc loquendi formula  
passim exaudiatur, vsus vero eiusdem rectus non omni-  
bus sit notus, in fundamenta eius paulo curatus in-  
quirere, & in quibus casibus licite DEO quid COMMIT-  
TENDVM, despicerè opera pretium esse duxi. Scilicet,  
quoties saluberrimæ leges cessant, aut illarum vsus &

exercitum impeditur, toties supremi Numinis potestas, cui omnes humanæ potestates subordinantur, succedit, & locum quasi harum supplet, ut proinde ipsi aeterno ac summo Monarchæ, illa, qua deficiunt, committi & debeat & possint. Ex quo simul patescit, quidnam sit, commissio DEO facta. Nimirum nihil aliud, quam actus, quo ea, quæ a potestate humana iuxta legum, præscripta vindicari possent aut deberent, ad DEVVM, tanquam summum directorem & vindicem, referuntur, eiusque animaduersioni relinquuntur. Ut autem distin-  
tius hac in re procedamus, causas prius inuestigabimus & fontes, ex quibus hæc DEO facta COMMISSIO quasi profluit, deinde effectum eius paucis sumus per-  
lustraturi.

## §. IIX.

Committuntur vero nonnulla DEO, vel a superioribus, qui subditis præsunt, vel ab illis, qui superioribus subsunt ac parent. Illi tales sunt vel immediati, quie ab ipso DEO constituti sunt, nec alium quam DEVVM super se agnoscunt, aut saltem hisce assimilantur: vel mediati, qui scilicet ab alio potestatem acceperunt, eamque vel iure proprio, vel alieno nomine, exercent. Vocantur hi alias moribus nostris *Magistratus*, qui licet iuxta Romanarum legum scita a iudicibus differant, veluti discrepantiam illorum ostendit *lex. 5. ff. de re iud.* vbi iurisdictionem Magistratus, notionem vero Iudicis esse, innuitur, vid. Francisci Polleti *Hist. for. Rom. L. 3. c. 1. p. 206. & L. 5. C. 17. p. 553.* in eo tamen inuicem hodie conueniunt, quod eadem persona, penes quas notio est, & de causis controuersis iudicent. Lauterbach. *Coll. Th. pr. T. de Iud. §. 32.* atque si quædam eorundem forum supergrediantur, vel salus publica, aut aliæ circumstantiæ id requirant, proprio iudicio sus-  
pen-

¶ (7) ¶

penso, diuinæ vindictæ haud raro locum relin-  
quant.

### §. IX.

Summi Imperantes, qui non nisi DEVM agno-  
scunt superiorem, eidem committunt vel talia, quæ ipso-  
rummet iura concernunt, vel quæ ab aliis populis pa-  
trantur, eorum potestatibus haud subiectis, aut quæ ad ipsos  
subditos spectant. Primum quod attinet, toto die vi-  
demus, vbi summis Imperantibus ad sua defendenda  
aut iniuste ablata recuperanda belligerandum est, feli-  
cem euentum DEO ideo committi, quod omnes ve-  
rum agnoscant illud Pindari; *ἴδια πάθειαν, χω-*  
*ρεὶς ἥσθι.* Solus quippe DEVS, ceu summus Monarcha,  
legum & Iustitiaz hostes excutit imperiis, certissi-  
mamque illis victoriam concedit, qui se autore  
militant; tales autem qui sint, ipsius Regum  
omnium supremi Regis tantum est arbitrari. Sic ex di-  
vino præcepto bellum suscepit Iosua *Ios. VIII. 1.* & Mosen  
ex mandato DEI bellum gessisse, nec minus Dauidem,  
ex sacris notum est litteris; vnde & illud patet, eosdem  
secundum rerum exitum soli adscriptissimè lehouæ. Plura,  
quæ ex historiarum monumentis afferri huc possent,  
mitto, vnum saltim hanc in rem infigne Imper-  
atoris nostri Iustiniani adnotasse sufficerit exem-  
plum. Hic enim in *prooemio Inst. §. 1. 2.* quod in hosti-  
libus proeliis victor extiterit, id annuente atque propi-  
tio DEO peractum fuisse, disertis verbis, insignem pie-  
tatem spirantibus, testatur. Neque hodienum aliunde  
victorias suas se expectare summi Imperantes profiten-  
tur, dum in declarationibus belli id præcipue urgent;  
fore ut DEVS instam causam foueat; se DEO autore,  
iustitia dictitante, bella gerere: *Von Gott und Rechts-*  
*wegen; Gott werde die gerechten Waffen segnen. Quo*  
*ipso*

ipso sane dubiam armorum fortem DEO committi, ne-  
mo facile ibit inficias. vid. Grot. de I. B. & P. L. III.  
C. IX. §. 4 n. 2.

## §. X.

Verum enim vero accidit haud raro, vt iustus  
etiam causa cadat, & qui legitimum belli finem habet,  
dum ad tranquillitatem, vel ad tutelam suam idem  
dirigit, ab alio qui libidine dominandi alisque iniustis  
invasionis & ausis ad id procedit, vincatur opprimaturque.  
Sane Alexander ille magnus, non nisi effrani hac  
agebatur dominandi cupidine, dum quietos & a notitia  
quoque sua remotos populos scrutatas bello persequere-  
tur, & tamen nunquam fere non vicit eus sit, adeo vt  
Lucanus L. 10. v. 21. illum felicem terrarum prædonem  
vocare, non dubitet. Nimirum solet aliquando DEVS  
ipse, vt peccata mortalium coercent, tyrranicas has  
di-reptiones permittere, iisque ceu flagellis vti, sed me-  
tis constitutis, quoque eas toleraturus sit: tandem  
tyrannos grauiſſime vlcificitur, sarcitque ac restituit la-  
befactata, quemadmodum hoc egregie demonstratur in  
Chronico Carionis sub Henrico Salico, p. m. 554. & pas-  
sim, vbi de diuina prouidentia in translatione &  
deſtructione regnum agens, elegantia atque pia verba  
profert. Scythæ quoque in sapienti illa minime que scy-  
thica oratione, apud Curtium Lib. 7. cap. 8. Alexandro id  
inculant, & docent, quod dum ad culmen venire homines  
contendunt, vna cum ipsis ramis, quos appreenderunt, decidant.  
Quibus verbis ad infelicem iniustorum exitum respicien-  
tes, cum aliud auxilium non supereret, huic fato im-  
minentis sibi ab Alexandre iniuria vindictam commis-  
serunt. Erat sane prudens hoc Scytharum consilium,  
quod, si rem iuxta Christianæ religionis normam exami-  
naue-

nauerimus, ad diuinam nos ducer prouidentiam, qua dirigente accedit, vt superbi tandem de sede sua deiciantur, releuenturque oppressi. Tuto ergo in hac diuini Numinis voluntate Princeps iniusta vi suis possessionibus deiectus acquiescat, ne intempestive se potentiori opponendo, maiora sibi suisque mala accerat, aut desperatione quadam corruptus, præpotens Numen iniustitiae aut iniquitatis accuset.

## §. XI.

Quid ergo ratione aliorum populorum sua potestati non subiacentium, princeps diuinae vindictæ relinquere debet? Evidem, sicut in republica quilibet ci-vium de propriis faltem tenetur actionibus, neque ob ea, quæ ab aliis geruntur, nisi hæc speciali quadam ratione ad ipsum spectent, vid. Puffendorff. *de off. Hom. & ciu. L. I. c. i. §. 18.* vel præmia nanciscitur, vel poenas sustinet, imo culpæ potius adscribitur, si quis semet rei ad se non pertinenti immisceat, *l. 36. ff. de R. I.* ita etiam in magna illa gentium societate, ea parum vel nihil ad principem attinere videntur, quæ apud gentem illi nullo iure subiectam perpetrantur; modo talia sint, quæ ipsi nullam iniuriam inferunt, pacatumque reipublica sua statum non turbant. Imo, sine iniuria Princeps ab alio, æque supremam potestatem habente, factorum rationem exigere, vel agendi modum præscribere vix poterit, quin potius alter iste, si aliter non valeret, iustis armis suam libertatem aduersus impedientem tueretur. Hæc tamen omnia non prohibent, quo minus etiam apud exteram gentem summus imperans suas interponere partes queat, modo non excedat modum. Finge, atrocissima in diuinam maiestatem scelera apud vicinum populum impune admitti, horrendis blasphemias Deum quotidie lèsi, tum vero si Princeps christianus, amore Numinis atque charitate erga prox-

rum motus, eam gentem sui officii fraterne commone-  
faceret, nemo sanus, credo, hoc ipsi virtio vertet. Illud  
forte non æque planum apud omnes existit, quo usque  
in tali casu procedere liceat; num violenta quoque me-  
dia adhibere, gentemque istam bello coercere permis-  
sum? Hic illud ante omnia concedendum, si cultus  
DEO debitus non labefactatur modo, sed & tales ne-  
quissimi hominum scientes volentes summum Numen,  
dirissimis blasphemias lacestere non desinunt, omnemque  
adeo religionem pessundant, hoc ipso vniuersam  
mortalium societatem laxi: nam ut DEVS colatur, id  
vero fundamentum est & columna Reipublicæ, & hac  
sola virtute vniuersa hominum suffinetur compages: hanc  
si tollis, vita hominum stultitia, scelere, immanitas,  
complebitur. Ultimum hoc firmissimumque humanæ  
societatis vinculum est, quod qui negligit, in mortalium  
genus iniurias est. Puffendorff, de I. N. & G. L. VII. c. 4.  
§. 8. & de O. H. & C. L. I. c. 4. §. 9. Porro & illud certum  
est, ut, quemadmodum iniurias queis propinquai vel  
parentes proscinduntur, pro amoris, quo eodem pro-  
sequimur, ratione tanquam nobis ipsis illatas solemus  
estimare; ita quoque DEO illata iniuria eo maiorem,  
nobis merito excite dolorem, quo ardenter ille super  
omnia nobis est amandus. Hominis sane christiani vti-  
que est, eo anniti totis viribus, & canere, ne proximus  
in tale crimen facile prolaboratur, aut si quispiam eodem  
se iamiam polluit, de placando Numine admoneatur.  
At, num gens libera hoc in casu mediis violentis eo  
adigi debeat aut possit? id vero est de quo valde ambi-  
go. Nam primo illud certum esse arbitror, inter æqua-  
les poenam locum non habere, cum haec necessario  
superiore exigatur, vnde nec in hoc casu nostro obti-  
nere poterit. Videndum ergo, an, quod ex hac ratio-  
ne suscipitur, bellum, legatum & iustum vocari me-  
reatur,

reatur; imo an consultum sit, ex dicta ratione bellum  
inferre? Vtrumque horum negandum censeo, nisi bel-  
lum tale ab ipso DEO fuerit imperatum. Nam quomo-  
do, queso, poteris iustum vocare illud bellum, quo ipsius  
Numinis ius lēditur, imo ipsum Numen impotentia ali-  
cuius arguitur? Lubet simili quodam rem illustrare. In  
sacris litteras summi imperantes DEI ministri dicuntur;  
hinc ponamus, duos in regia quadam aula æquali gau-  
dentes potestate inueniri ministros, quorum unus qui-  
dem fidelis obsequio Regi adhæret, alter vero dominum  
suum palam turpisimis conuiciis proscindit: ipse Rex  
calumnias à maleuolo illo summa audacia effusas exaudit,  
nec tamen villo modo hoc crimen coërcet, sed inimico  
ob oculos quotidie ambulanti parcit; tum vero alter ille,  
pío quidem in principem actus zelo, ea, quæ Regi ac-  
cidunt, ad se quoque pertinere putans, propria hunc ag-  
greditur autoritate, violentasque illi infert manus: iu-  
stumne hoc factum pronunciabimus? Sane maiestatis  
iura Zelotes ille inuolauit, dum, quod solius Imperan-  
tis erat, nimirum promeritas delictis statuere poenas, fibi  
attribuere contendit. Maiestati conuenit, si quidem  
spes emendationis affulget, veniam concedere; optimum  
quippe & firmissimum imperium esse, dixit Largius Di-  
ctator, apud Halicarnass. L. 6. quod subditos beneficiis  
magis quam suppliciis in officio continet: saepe benevo-  
lentia plus valet ad corrigendos maleuolos, quam ni-  
mius rigor, plus exhortatio, quam comminatio, plus  
charitas, quam potestas, prout & in l. i. C. si quis Imp. ma-  
ledix, Imperatores Theodosius, Honorius & Arcadius id  
inculcant. Hac sane facultate, subditos prudenter guber-  
nandi, Regem priuare videtur, qui, prout iam di-  
ctum, priuata autoritate crimen vindicare audet, id vero  
iniuriosum esse, in propatulo est. Pari omnino ratione  
accidit, vt ius DEI lēditur, si ob iniurias ipsi illatas

bellum decernatur. Reges Principesque in conspectu  
 omnisciū omnipræsentisque DEI versantur, quæ ab his  
 male aguntur, DEV M minime fugiunt, iustissimus hic  
 est, iniquitates impunitas non dimittet: omnipotens est,  
 poterit ea, quæ semel decreuit, sine ope humana ex-  
 qui: seruiunt ipsi omnes creaturæ, coelum & terra ab  
 eius nutu pendent: sunt prater bellum alia malitia mortali-  
 um coercendi media, ignis, aqua, famæ, pestis, in-  
 sectæ & alia infinita: his pro sua sapientia DEV S vtitur;  
 n̄ γαρ ἔγνω νῦν κορίσ, οὐδὲ μετέλθει αὐτὸς εἰρήνη. Rom.  
 XI. 4. Quanta vero audacia, diuino Numinis li-  
 bertatem decernendi poenas, vel ignoscendi sotibus, pro-  
 prio motu saeuendo adimere! Sane, autore DEO tale  
 bellum nullo modo suscipitur, & reipublicæ parum con-  
 fult, qui eam huic implicat: euentus belli est incertus,  
 atque si impia cohors euaserit superior, extrema ciuibus  
 imminent; nec dubium, quin maius malum quam bonum,  
 ex vindicata hac in DEV M commissa iniuria, ex-  
 furgat. vid. Puffendorff. de Iur. N. & G. L. IX. C. VI. §. 4.  
 in fin. Exacerbatis enim impiorum animis, tantum abest,  
 vt ad saniorem mentem te duci patiantur, vt potius  
 hinc occasionem nanciscantur, atrocissimis criminibus.  
 Numen de nouo lacescendi, siquidem blasphemias in-  
 nocentum cædibus atque rapinis nunc porro cumula-  
 rent, & quæ alia sunt incommoda, quæ hic prosequi  
 longum foret. Relinquuntur hæc talia ipsi DEO, ne-  
 que ultra fraternalis adhortationes in liberam gentem  
 quicquam sibi licere reputet Princeps christianus, cum  
 non fas sit hominibus ea sibi vindicare, quæ DEV S, vt bonita-  
 tem, longanimitatem, sapientiam, iustitiam suam demonstrarer,  
 sibi reseruauit, verba sunt maxime reverendi Dn. D. Bud-  
 dei, Paroni atque Praeceptoris mei plus quam filiali cul-  
 tu prosequendi, in Inst. Theol. Moral. part. II. C. IV. §. 7.  
 Nec

Nec in contrarium mouent quæ habet Grotius de I. B. &  
P. L. II. C. XX. §. 44.

## §. XII.

Ad subditos quod attinet, videndum nunc est, quænam hic foro humano atque potestati summorum imperantium eximantur. Præcipuum in Republica regenda locum marito illa sibi vindicant, quæ ad cultum Numinis spectant; Nullus autem DEI cultus vñquam exitit, qui optimæ politiæ melius conueniat, quam religio Christianorum; modo illius dogmata quisquiliis hæreticorum non conspurcentur: proinde boni Principiis ante omnia esse videtur, vt huc suam sollicitudinem dirigat. Probe id agnouerunt Theodosius & Valentianus, A. A. cum in l. 3. C. de SS. Trinit. scriberent; *Decree arbitramur, nostrum imperium, subditos nostros de religione commonefacere: Ita enim & pleniorē acquiri DEI ac salvatoris nostri Iesu Christi benignitatem, possibile esse existimamus, si quando & nos pro viribus ipsi placere studuerimus. & nostros subditos ad eam rem insituerimus.* Parilem industriam adhibuit Justinianus in anathematizandis hæreticis, prout ex l. 5. C. ibid. & seqq. videre est. Ast, cum una saltim vera atque saluistica existat religio, Ephes. IV. 4. 5. quam qui profiteretur coetus, demum ecclesia, extra quam nulla salus, nomen meretur; non abs re fecisse videntur Imperatores, in l. 1. C. de SS. Trin. statuentes, cunctos populos imperio Romano subiectos in unica saltim religione veriari debere. Et sane nescio, an quicquam Christiano Principi magis expetendum, quam vt omnes eius subditi in unitate fidei ambulent, & quam Christus nos edocet, semitam incedant. Enimvero hoc optare quidem, sperare autem in magna republica vix ac ne vix quidem licet. Quæstum inde iam dia fuit, quid Christianum principem deceat, siquidem subditi in capitibus religionis diversa statuant, & quidam eorum in errore versentur?

Ante omnia hic aduertendum, vnde dissensus ille vel error in religione fuerit prognatus; si enim ex imbecilitate intellectus hoc ipsum contigisset, in cassum impenderetur omnis animos emendandi labor, nisi prius sublati impedimentis, vitiis nempe intellectus, efficiatur, ut quid verum falsumque sit, homines agnoscere queant, tum demum enim proposita religionis veritate, perpicuisque argumentis fidei certitudine firmata, assensum facile impetrare licebit. Exulare autem hic merito iubentur coactiua illa media, quibus ad mutandam sententiam semel receptam quenquam induci posse quidam arbitrantur; Neque enim magis quis ad credendum, verum esse quod hactenus falsum putauit, compelli potest, quam ille, cui ob vitium oculorum quæ nigra sunt, sub flavo vel alio colore repræsentantur, vi quadam externa eo adigi poterit, vt reuera credat, quæ flava videt, nigra esse, nisi visus suis sanitati restitutus, & iam distincte colores singulos sponte percipiat intueaturque. Hinc reæte Lactantius L. 5. c. 19. *Quis enim, inquit, mihi imponat necessitatem vel credendi quod nolim, vel quod velim non credendi.* Imò, qui principiis practicis (quæ ipsi nota sunt) melioribus contradicit, animum suum sibi met reddit infensum, vt se iudice non absoluatur, vnde conscientia mordens oritur, quæ luculenter testatur, nemini fas esse, id agere, quod secus fieri debere ipse agnoscit, neque hinc ulli homini jus in alterius conscientiam competere. Fufius hoc & solide demonstrat Dn. Werenfels. in *Dissertat. de iure Magistratus in conscientias, que est II.* in *dissert. Theolog. sylloge;* p. 78. sqq. His iam præsuppositis, vtique arbitror, pio principi, qui vera religione ipse est imbutus, eo annitendum esse, vt quantum quidem per ipsum stat, eadem religio suis ciuibus sedulo inculcetur, & hæc vbique dominium obtineat. Interim caute admodum agendum cum dissentientibus. Non quidem mihi hic

hic sermo est de iis, qui errores perniciosos in vulgus spargunt aliosque seducunt, ad rebellionem & defectionem ciues solicitantes: tales enim turbones, quin præcedentibus prius christianæ admonitionis gradibus, extermi nari debeant, modo non ad corporis usque supplicium procedatur, ob conuersonis spem, qua superest, ego quidem nullus dubito: præcidendum membrum, tale morbidum, ne pars sincera trahatur. Quod si vero diuersam sententiam amplexi quiete viuant, nec metuendum sit, ne malum ad alia quoque ecclesiæ membra serpat, tum vero prorsus alia incedendum erit via; tales enim tolerandi videntur, spe conuersionis & pacis publicæ gratia, præsertim si paupertatum cum iis fuerit initium. Sequatur hic Princeps christianus monitum Saluatoris, qui Zizania non eradicari, sed relinquere voluit. *Matt. XIII.* Tolerari debent errantes, ita quidem, ut fidelis ministrorum ecclesiæ informationi & fraternæ adhortationi tradantur, quo tandem, agnita sua hypotheseos falsitate, aternam damnationem hand dubie post se trahente, veram religionem amplectantur, eisdemque normæ vitam conformem agant. Obstinaces vero, tutissimum erit, iudicio diuino relinquere, cum conuersio peccatoris ab humanis viribus non pendear, sed diuina misericordia opus sit. Scandali tamen ratio habeatur sedula, ne iugum cum infidelibus trahere, aut errores illorum consensu nostro approbare videamus. Huc faciunt qua tradit Meissner *Phil. sobr. scđ. II. c. 3. p. 521. qu. vnica: Virum amicitia vera locum habeat inter diuersarum opinionum scđatores?* ubi amicitiam naturalem, coniugalem, itemque politicam seu ciuillem, at non moralem, multo minus spiritualem, inter fideles & hereticos confistere posse & debere, prolixe & erudite docet. Puffendorff etiam *L. II. de I. N. & G. c. 4. §. 4.* ob religionem neminem odio habendum, quin ipsi etiam amicitia officia deberi, cuicunque cit.

cit. Suo præterea id ipsum exemplo comprobavit in Imperio nostro Ferdinandus I. sub quo pax religionis, cuius in Passauensi transactiōne primum fundamentum posuerat, in comitiis deinde Augustanis, quibus ipse, et si nomine fratris præsedit, absoluta est. De hoc enim Imperatore Crato in epistola præliminari Hist. Dubraui memorat, ipsum crebris sermonibus ante obitum testatum fecisse, inter summa bona, quæ DEVS in gubernatione sua Imperii concessisset, primum atque maximum, vero animi iudicio, se hoc ducere, quod ad sedandas discordias publicas animum adieceret, & tolerantia in religione formulam DEVVM sibi in mentem dedisse. Ecce quam pie Augustus hic diuinam prouidentiam colat, dum eidem ea, quæ hactenus in religionis negotio egit, adscribat, subditorum autem diuersa cum ipso sentientium salutem cordium scrutatori committat; Optimum namque hoc esse remedium, quod christiano principi in arduo fidei negotio conueniat, sanioribus semper vi-  
sum fuit. vid. Schroeter. *Caf. Conf. LXX.*

## §. XIII.

Legum porro condendarum curam ad illos spectare, penes quos τὸ κύριον in republ. est, supra §. 5. dictum. Cum vero, secundum Aristotelem, omnis lex habeat δύναμιν ἀναγκαστικὴν, siue vim cogendi I. Eth. c. vlt. & coercionem, secundum Papinianum in I. i. ff. d. II. vnde & in I. p. C. eod. hominum vitas constringere dicuntur leges sacratissimæ: videre hic animus est, an hæc legum vis sepe ad omnes omnino ciuium actiones extendat, num verò quædam inueniantur, quæ eandem respuant, atque diuinæ potius vindictæ sint committenda? Sane id facile quilibet agnoscit, actus, ad publicæ rei felicitatem idoneos, permitti & imperari, hanc vero impedientes, vetari posse a summo imperante. Neque vero sola abstinentia à maleficiis commune bonum promouetur,

sed

sed necesse est, ut symbolum suum quisque conferat, per verum  
cerum & perpetuum rerum viriumque suarum usum hunc in-  
finem. Cumberland. De LL. nat. C. I. §. XXIV. p. m. 40.  
Recte ergo faciunt Imperantes, quibus publica salutis  
cura incumbit, si ciuibus suis, quid facere quidue omit-  
tere debeant in vita ciuili, constitutis poenis iniungunt.  
Puffend. de O. H. & C. L. II. C. XII. §. I. Ast cum in di-  
rigendis hac ratione puniendisque ciuium actionibus  
saltim salus Reipublicae respiciatur, quæ vult, ut nequi-  
tia coërcetur hominesque ad meliorem adducantur fru-  
gem, & si quid corpori, bonis aut famæ aliorum iniu-  
ria detractum fuerit, iterum restituatur: vbi horum ni-  
hil inuenitur, externam coërcitionem cessare, neque  
violentæ animaduersioni locum esse, haud abs ratione  
quis dixerit. Sua hinc sponte fluit, internas hominum actio-  
nes & cogitationes quæ, in se consideratae, nec publicum  
statum iuuare, neque aliis damno esse possunt, legisla-  
torum humanorum dispositioni non subiacere; Grot. de  
I. B. & P. L. II. C. IV. §. 3. Versantur enim hi circa nego-  
tia solum, quæ in Republ. salutariter expedienda ve-  
niunt, & legibus definitur, quicquid sub legislatoris com-  
prehensionem cadere potest, futura sc. contingentia atque  
res singulæ, quæ sensu incurruunt, de quibus tamen non  
nisi post sufficientem cognitionem iudicium ferendum.  
Multo ergo minus Princeps, quem cogitata ciuium pla-  
ne fugiunt, quicquam de iisdem efficaciter pronuncia-  
re valet. Extra ciuilem hoc est iurisdictionem, quippe  
quod prorsus ignoratur, & probari nequit, adeoque vin-  
dictæ expers: arg. Can. fin. caus. XXXII. qu. 5. neque ex acti-  
bus merè internis ius aut obligatio inter homines nasci-  
tur. Grot. ac I. B. & P. L. II. C. XX. §. 18. Et licet illi, qui  
flagitia mente peruelunt, sese ipsos demum prodant,  
quod quidem in somniis, in deliris, in ebrietate aliisque  
affectionibus, quibus inopinato quis abripitur, accidere  
potest;

potest; non tamen ab hominibus ob id puniri poterunt;  
 hinc recte Vlp. in l. 18. ff. de poen. *Cognitionis*, inquit, *poenam nemo partur*. neque solus animus delictum constituit, arg. l. 1. §. 1. ff. de furt. l. 225. ff. de V. S. Nec obstat, quod in delictis ratio intentionis haberi soleat, imo ex proposito delinquentium delicta existimentur, §. 7. *Inst. de furt.* l. 53. ff. eod. Hic enim sermo nobis est, de simplici voluntate, in nudis propositi consistente finibus: vid. Schilter. *Manud. Phil. Moral.* c. VII. §. 39. sive, vt Zieglerus loquitur, ad *Grot.* L. II. de I. B. & P. c. XX. §. 15. n. 39. de conatu illo, qui actus voluntatis elicitus, immanens & mere internus est, atque alias intentio agendi dicitur; non vero de tali, qui iam aggressionem operis & executionem aliquam propositi inuoluit. Evidem Zieglerus l. eit. actum intellectus, qui commotionem voluntatis antecedere solet, strictè cognitionem vocat; Schilterus verò hoc vocabulo ita vtitur, vt sub eodem actum voluntatis quoque comprehendat. In utroque tamen sensu lex allegata 18. vera est. Nam si quidem vox *cognitionis* de actu intellectus accipiatur, cum in nostra potestate non sit, omnes peccaminosos motus cohíbere, vid. D. D. Buddei *Inst. Theol. Moral.* P. I. C. I. scđ. VI. §. 8. dicendum quoque ex sententia legis 185. ff. de R. I. leges ciuniles ad impossibilia neminem obligare: neque ea, quæ à nostra directione non pendent, imputari nobis queunt; Puffendorff. de I. N. & G. L. I. c. V. §. 5. sqq. & c. IX. Nifus vero voluntatis, si vitium admixtum habeat, nullam quidem meretur excusationem; interim, cum talia soli cordium scrutatori omniumque cognitionum nostratum iudici certa sint, in eius reservati habenda, Deique iudicio relinquenda sunt. Vid. Dn. Stryck. *Dissert. de Foro Confe.* c. I. n. 80. sqq. p. 18 & c. III. p. 148. n. 4. De animo solus DEVS iudicat. Lauterb. *Compend. rit. de primis delict.* Quod autem leges pari sorte scelera punire,  
 & sce-

& scelerum voluntatem , dicantur in L. I. Cod. Theodos. ad l. Iul. de ambitu ; & in L. 5. C. pr. ad l. Iul. Maieß. eadem seueritate voluntatem sceleris , qua effectum puniri iuria velle , tradatur : item quod solicitatores alienarum nuptiarum , etiam si adulterium perpetrare non potuerint , raman propter voluntatem perniciosa libidinis coercentur , l. 1. ff. de Extraord. crim. vid. l. 5. C. de Episc. & Cler. l. 20. C. de fure . hoc inde est , quod ad animum iamiam ipsius operis aggressio accesserit , id enim utique poena dignum : quod tamen si autorem mox poeniteat , remitti solet . Ziegler. l. c. l. 19. ff. ad l. Cornel. de fals. licet vel maxime contrarium aliquando a Parlamento Parisino fuerit statutum . Bodinus namque de Republ. l. 4. c. ult. hac refert : Nobilis quidam Normannus fraterculo sodali confitebatur , se Franciū Regem Gallie occidere voluisse ; nihil tamquam ausum esse , & flagitosā voluntatis sponte poenitere . Sodalis reum ad Regem acutulit : Rex deprehensum ad curiam Parisorum mitti iubet , curia capitali suppicio , quasi perduellionis coniactum , damnauit . Aequius tamen tanto iudicii rigor humanitatis ratione temperarentur , vt Scharrockius loquitur , de off. sec. Ius nat. c. III. n. 7. p. m. 188. Ne autem iis patrocinari hic videamur , qui disterium illud , Gedanken sind Zollfreys eo usque maximo Christianæ rei damno extendere solent ; vt arbitrentur , hoc ipso integrum cuius fieri , impiis turibusque imaginibus pro lubitu & impune indulgere : sciendum est , ex lege diuina reatum inducere voluntatem , et si exitu omni eventuque nocivo caret . Sic iratus fratri etiam homicidae , viti proximitate , accedit . Matth. V. 2. & quisquis aspercerit solum mulierem , vt concupiscat , iam , iuxta legis euangelicæ seueritatem , adulterauit eam . Rom. VII. 7. 1. Job. II. 16. hinc quoque Ebr. IV. 12. verbum DEI discretor cogitationum & intentionum cordis , vocatur ; harum namque diiudicandarum ius DEUS sibi soli referuauit , nec ullam iniquitatem ,

quamvis occultam, dimittet impunitam, sed singulas, pro atrocitate sibi soli penitus perspecta, puniet. Huc faciunt quæ tradit Autor libelli ante aliquot annos editi, cui titulus: Ein hundert drey und dreyzig gotteslästerliche/ gottlose/ schändliche und schädliche / auch unanständige und theils falsche teutsche Sprüch- Wörter &c. dargeleget durch Ernst MEISNERN. Eisenberg. 1705. Vbi præter alia, quæ vsu hactenus obtinuerunt, prouerbia, superius quoque allatum dicterium, ad amusim sacrarum litterarum examinatur, eiusdemque abusus solide ob oculos ponitur. pag. 4. Multos etiam, qui Christi sancto nomine superbiunt & falsò gloriantur, in ruborem facile dare poterunt, quæ ex Seneca, Cicerone, Iuuenali, ethnicis scriptoribus, Tertulliano itidem & Maximo Tyrio, sententiam nostram confirmanitia, refert Scharrock. de off. sec. Ius. Nat. c. III. n. 7. p. 183. sqq.

## §. XIV.

Non tantum vero interni actus humanum forum supergrediuntur, sed & ipsa crimina, quæ reapse fuerunt perpetrata, aliquando ob defectum legitimæ probationis, poenas promeritas in foro externo effugient. Cautionem enim summam hoc in articulo iura exigunt, & promptio- ra sunt ad soluendum quam ad ligandum. l. 47. de O. & A. neque de suspicionibus aliquem damnari patiuntur l. 5. pr. ff. de poen. l. 3. §. 1. in fin. de minor. Satis enim putant, impunitum relinquì facinus nocentis, quam innocentem damnare d. l. 5. H. Grot. L. II. de I. B. & P. cap. XXIII. §. 5. n. 1. Ast cum Reipubl. quam maxime intersit, ne delicta maneant impunita, sed vt detegantur illa coercenturque l. 51. §. 2. ff. ad l. Aquil. Puffendorff. de I. N. & G. L. VIII. c. III. hinc legum sacerdotes varia manifestandæ veritatis remedia proposuerunt. Non vltimum inter ea- dem locum tenet tortura, hanc enim efficacissimam esse ad requirendam veritatem, Diuus Augustus existimat, in

in l. 8. ff. de Question. Interim tamen nec hæc tam certa est, vt ipsi semper fides sit habenda, quin potius, ipso Vlpiano teste, pro re fragili & periculosa & quæ veritatem fallat, habenda. l. i. §. 32. ff. de quaest. Et Vlpiani hoc effatum confirmat triste exemplum, cuius Clarus meminit, quod nimirum viderit torqueri suspectum de occiso nobili, & propter suam confessionem vi extortam ultimo supplicio affici; post multos annos istum nobilem, qui in quodam castro carcere detentus fuerat, reuersum esse. Hinc alii torturam ceu iniustum, crudele & inhumanum quid plane reiiciunt, & Christianis hominibus indignam reputant. Ego liem hanc in praesenti meam non facio. Illud saltim inquirere institui, si in loco, vbi tortura in vim probationis iamiam recepta est, de atroci quodam delicto, siue permanente siue transeunte, Zanger. de quaest. proem. n. 34. quaestio fuisset, instituta, nec quicquam profecerit, sed reus tortus negauerit, se delinquisse, quid tum statuendum? Hunc definitiue prorsus absoluendum esse, volunt Doctores vid. Carpz. p. III. qu. 125. n. 10. cum reus, habita quaestione, absolutus habeatur, l. vlt. ff. de calumniat. verbum autem absoluere, ad definitiuam pertinet sententiam. l. 3. C. de sent. Et interlocut. tum quod tortura sit instar probationis eiusque naturam induat, quippe in cuius locum est surrogata. arg. art. 69. Ord. Crim. vbi Matib. Stephan. at vero actore non probante, reus absolui debet l. 4. C. de edendo. Sequitur hinc, idem iuris obtainere in reo, qui in tortura delictum negat atque in negando persistit. Huc faciunt verba Ordin. Crim. art. 61. Und soll in diesem Fall der Ankläger allein seinen Kosten und der Beiflager dergleichen seine Abzung/nachdem er seinen Be:dacht Ure sach geben/ auch entrichten &c. Quo ipso, dum reus hoc casu ad refundendos sumptus solum obstringitur, ab omni reliqua poena liberatur. Carpz. l. c. n. 13. Et hæc qui-

quidem, si forum externum spectes, satis se bene habent.  
 Quemadmodum autem iustissimo diuino talionis iuri nullus Regum præiudicium adferre vñquam poterit, ita nec hic criminis reus a iudice absolui plane poterit, vt per tormenta à poena ordinaria liberatus. Proinde caueat iudex, ne talem ceu innocentem plane dimitrat, sed significet prius, se eum diuino tribunali relinquere, DEV M, quæ patrata sunt, non fugere, hunc opportunitum vindicandi flagitiæ tempus habere cognitum & medicamenti instar poenam sceleri cuiuis imponere: exempla etiam sera vindictæ diuina alleganda, vt ita impunitatis spe adempta, timor Numinis animo incutiatur, & peccator ab ulteriori nequitia deterreatur, eiusque emendatio promoueat. Ita enim demum suæ conscientiæ & publicæ tranquillitati iudex consuluerit.

## §. XV.

Saluis etiam iis, qua modo diximus, poena homicidii non dictatur, quando illud in rixa plurium est commissum, & de autore cedis non constat. Cum enim in foris humanis, vbi de poena irroganda agitur, certitudo corporis delicti requiratur, omnes quidem, qui tumultui interfuerent, eo adiungendi erant, vt defingantur, autorem; quod si vero hoc modo veritas elici nequeat, non omnes, mox ad ultimum trahendi erunt supplicium, per l. 17. ff. ad l. Cornel. de scic. ne innocentes iniuste occidentur. l. 5. ff. de poen. l. 22. C. cod. nec enim poena ordinariè ultra personam delinquentis, secundum DEI expressum mandatum, Deut. XXIV. 16. extendenda, conf. II. Reg. XIV. 6. Grot. de Iur. B. & P. L. II. c. XXI. §. 12. & 13. nisi inenitabilis Reipubl. necessitas & utilitas hoc requirat, id quod eleganter demonstratum in Diff. de panis innocentium sub præl. Dn. Bodini Hala habita 1702. Dn. Stryck. de Fero. Conf. c. VI. n. 101. p. 175. sed ob incertitudinem nemo

nemo capitali poena affici potest. Non tamen propterea omnes absoluendi, sed omnes simul poena extraordina-  
ria, veluti pecuniaria, carceris, vel relegatione, pro ar-  
bitrio iudicis puniri debent. *Ordin. Crim. art. 148. in verb.*  
Auch so einer in einem Aufruhr und Schlägen entleibet wird / und man mögte keinen wissen / davon er als verste-  
sthet (seilicet gefährlich und tödlich) verlehet worden wären  
sollen die Urtheiler bey den Rechts-Verständigen und an  
Enden und Orten / wie hernach gemeldet wird / Rathssyssie-  
gen mit Eröffnung allen Umständ und Gelegenheit solcher  
Sachen / so viel sic erfahren könnten / dann in solchem nach  
Erneistung mancherley Umständen / daß nicht alles Zu-  
schreiben / unterschiedlich zu urtheilen ist. *Quibus verbis*  
nulla certa poena exprimitur, sed res tota arbitrio pru-  
dentum relinquitur. *Matth. Stephan. in dict. art. 148. circa fin. & in art. 34. Carpz. p. I. qu. XXV. n. 3. sg. & n. 33.*  
Ipsum igitur cædis autorem duius animaduersioni re-  
linquere consultius est.

*Eft, prout Comicus ait, prefecto DEVS, qui que nos  
gerimus, audiique & videt --- ---*

*Bene merenti bene profuerit, mal merenti par fuerit.*

Sybaritis, Delphicum oraculum ab miraculum consulenti-  
bus, quod post citharædum in templo Iunonis occi-  
sum, sanguis scaturire videbatur ex perenni fonte, in  
hunc modum respondit:

*Non immortales hoc DEI patiuntur multum.  
Si quis enim prudens sclerata & septe profectum  
Committat facinus, grauis hunc pope poena sequetur.  
Non exorabit, neque si genus ab Iue summo  
Duceret; ipse suo collo, collisque necrum  
Hoc luet, & generi cumularim danna ferentur.*

Testis est Alianus *Hist. III. 43.*

Porro accidere potest, ut tam de delicto quam de eiusdem autore certus sit iudex, nec tamen poena legibus statuta locum sortiri queat: vnde iterum ad altius supremi Numinis tribunal recurrendum. Referri huc meretur homicidium a marito ob vxoris adulterium perpetratum. Dionys. Halic. L. II. refert, Romulum legem sanxisse, vt, si vxor aliquid peccasset, poenam lueret, ex mariti arbitrio; de priscis Germanis Taciti de M. G. 19, 2. hæc sunt verba: *Adulteriorum poena presens & maritis permissa. Confipit Vlpianus in l. 3. §. 3. ff. de SCT. silan. dum ignoscendum, putat marito, qui iusto dolore perculsus adulteram occidit: quantum scilicet ad poenam attinet legis Corneliaz, non in totum vid. l. 22. in fin. l. 24. l. 38. §. 8. ff. ad l. Iul. de adult. in fin. de siccari. Sic quoque in l. 4. C. ad l. Iul. de adult. adulteri imperfectio, si vilis fuerit persona & alia requisita, quæ in l. 24. ff. ad l. Iul. de adult. recensentur, adsint, legitimum factum nullamque poenam mereri perhibetur. add. l. 3. §. 1. ff. de Concubin. Pariter iis Canon. in c. si vero. n. X. de sentent. excom. marito, qu violentas manus clerico in adulterio deprehenso iniecit, excommunicationem remittit, nec tenetur is a Rom Pontifice absolutionis beneficium exigere. Inde sicut iam antiquissimis temporibus in causa adulterii, marti iudicium erat licitum, ita hodiernum quam plurimi ii eo conueniunt, recte cessare poenam ordinariam i a fco externo, si maritus ipsum quoque adulterum interfecisset, parim, vt verbis Excell. Dn. Brückneri in Diff. de eo quid iustum est in foro externo & interno. p. 40. vtar, ob odiun & execrationem adulterii, quod per se meretur mortem, parim ob exemplum, vt alii deterreantur, pariter ob imbecillitatem humanam, cum tanta affecti iniuria aliquando sibi temperare nequeant. Nam adultera ipsi quoque mari-*

marito innocentia maculam infamia adspergunt, quippe qui variis coniuitis ludibriisque proscindi solet, ut alia ex adulterio redundantia mala aliis obseruata hic taceam. Hinc fit, vt dolor inde ortus, iustus passim vocetur, & efficiat, ne in cæde adulteri poena homicidii ordinaria locum sibi vendicet. Neque tamen ob hoc ipsum pro legitimo penitus & iusto illud habendum erit. Primo namque peccat talis maritus, aduersus *l. 76. de R. I.* quæ dicit, singulis non esse concedendum, quod per magistratum publice posit fieri; rationem assignat Aristoteles *Polit. 3. 6.* quod fere plurimi de rebus suis domesticis & in propria causa mali sint iudices; Hinc sane coercitio criminis huius superiori potius linquenda esset. Deinde maritus falsa conscientia priuatam vltionem exercere haud valet, quippe quæ diuino Numini admundum displicet, *Iacob. I. 20.* Porro quoque magnum nefas illud reputatur, quod peccans adulteri hac ratione poenitendi tempore defraudatus, mox ad gehennam detrudatur. Proinde recte Laymannus *Theol. Moral. L. III. tr. 3. p. 5 c. 2. n. 4.* ait: *tunc leges romanæ iniquas fore, si necem personarum in adulterio deprehensarum permitterent adprobative; non vero esse iniquas, si illam permittant negative, poemam homicidii ordinariam non decernendo.* Nempe, cum lafio Reipubl. in poenis infligendis præcipue spectetur, atque poena pro modo lexionis mitigari soleat, maritus vero adulterum occidens, societatem ciuilem parum vel plane non offendat, sed vltimi supplicii reum e medio tollat, aliosque hac ratione a simili flagitio deterreat, non abs ratione poena ipsi remittitur. Ast damnum illud animæ illatum, cum sit inæstimabile, *Matth. XVI. 26. Ps. XLIX. 8. 9.* nec cum toto mundo, ne dicam cum aliquali iniuria, comparandum, temporali poena reparari nequit, itaque iudicia hominum merito hic silent, sanctissimæ DEL iustitia expectando arbitrium. Conf.

D

de

de hac quæst. Dn. Brückner. *Diss. alleg. c. II. §. 5.* p. 39. ff.  
Dn. Stryck. *de For. Consc. VI. n. 127.* Leithoff. *trahit de in-*  
*re occid. adulterio.*

## §. XVII.

Licet autem in §. priori dicatur, quod pena, qua-  
lem ille meretur, qui animam perdidit, a iudice huma-  
no definiri non poscit, eo tamē ipso non hoc volo, ac  
si omnis plane cura animarum iudici esset abiicenda;  
quī potius nisi ipse Iudeus grauiissimo fæse obstringere  
vélit crimine, hanc præcipue in condemnandis reis cu-  
ram adhibeat, vt antequam sententiam mortis, si qua fer-  
enda, exequatur, legítimum pœnitendi tempus conce-  
dat, & non nisi probe instructum præparatumque ad ulti-  
mum trahant supplicium. Verum enim vero cum  
nonnunquam tam obstinaces & refractarii inueniantur,  
qui nullo modo ad pœnitentiam fæse persuaderi patiun-  
tur, sed potius vltro talē assumunt indurationem, quo  
condignam pœnam differant, atque iustitiam quasi elu-  
dant; hinc quærunt quid faciendum, vbi reus ad mor-  
tem condemnatus nōlit pœnitere, nec peccata sua agno-  
scere aut confiteri & ad gratiam DEI ac Christi meritum  
confugere? Per aliquod temporis spatiū executionem  
hoc casu differendam, omnibusque modis ac mediis labo-  
randum esse, quo reus conuertatur eiusque anima ex peri-  
culo præsenti eripiatur, bene docet Carpov. *P. III. qu.*  
*CXXXVII. n. 47.* quia, vt iam supra monuimus, salus  
vnius animæ, pro qua Christus mortuus est, videtur ca-  
teris omnibus rebus anteponenda; sed quia certo afferi-  
non poterit, vitam longiorem ad magis seriam respi-  
cientiam prodesse potuisse, si condemnatus pertinax exili-  
stat, ac ad veram viam & pœnitentiam nullo studio se  
reduci patiatur, executio acceleranda, ne respubli-  
cannum ex hac mora sentiat, & delictum impunitum  
relinquatur / s. ad l. Aquil. Atque hac ratione pronun-  
cia-

ciatum testatur Carpzov. l. c. Neque iudicis qui hac ratione procedit, quicquam imputari poterit, sed maleficus talis, ob misericordiae diuinæ mediorumque salutis contemnum, & quia sanguinem salvatoris sui pedibus conculeat, iudici mortuorum pariter ac viuorum acerimo, ipse aliquando rationem exæctissimam reddere iubebitur, cui iudex, si quæ sua sunt pro Reipubl. salute peregerit, cætera tuto commendet.

## S. XVIII.

Facutas puniendi iudicibus haud raro adimi solet, si nimurum crimen commissum fuerit præscriptum. Ita enim, aiunt, non modo criminis pena, sed & ipsum delictum, ac per consequens accusatio quoque & processus criminalis tollitur, iuxta communem omnium Doctorum opinionem, adnotante Carpzov. qu. 141. n. 6. De iure sane civili, per l. 12. C. ad l. Cornel. de fals. omnia ferre crima præscriptione viginti annorum extinguntur; id quod & in Saxonia receptum esse Carpz. l. citetur, saltim adulterii duplicati præscriptio quinquennialis, quæ alibi obtinet, hoc iure abrogata, per Const. Elect. 19. §. vlt. part. 4. in verb. sondern berühmte Lebensstraff ehn einige Gnade oder Nachlassung vollstrecket werden / auch die Verjährung der fünff Jahr / darauff unsere Schöppen-Stühle in dem Laster des Ehebruchs gesprochen / forthin nicht statt haben soll. &c. Alibi vero & hoc delictum, cum aliis æque atrocibus, præscriptione quinque annorum promerite pena subtrahitur; Carpz. l. c. & qu. 59. Maximi sane momenti hæc res est, si ob gentilium statuta a diuinarum legum tenore recedamus, prout quidem fit, si dictam præscriptionem ob solam legis ciuilis auctoritatem admittimus; hac enim medianente enormia crimina, quibus capitalem penam DEVS ipse statuit, & quæ vniuersus terrarum orbis morte digna agnoscit, impunita remanent. Hinc non immerito

D 2

Brun-

Brunnem. ad l. n. C. ad l. Cornel. de fals. Theologos scribit, de hoc dubitare; Certe cum in homicidio, adulterio similibusque criminibus disertam habeamus DEI voluntatem, audacissimus ille foret, qui eiusdem placita immutare sibi praesumeret. Legis diuina hac in re olim promulgata obligationem ipsum Euangelium strenue afferit: Christus venit, non ut tolleret in membris adhuc aliquatiter resplendens iniris naturae luminare, sed illustrius facheret, Et morale a suis legem fidelius obseruari procuraret. Scharrock, de off. sec. ius nat. Equidem iure ciuili obligatio tollitur per præscriptionem, nempe ob consensum ad legem, quæ non finit obligationes ciuium ultra certum tempus protrahi; iam autem quæso, demonstretur lex quedam diuina, quæ obligationem, quia homines ob delictum DEO satisfacere tenentur, ad certum tempus restringat. Mortalium non est, mandatis diuinis limitationes adiicere, & gratissima poena est, sub qua hoc interdicitur, Apocal. XXII. 18. 19. Non datur talis lex, igitur non habebunt rei quo provocent; ciuiles enim leges hac in re cœn iniquæ reiici debent, vnde tempus præscriptioni huic statutum, si vel maxime præterlapsum sit, haud attendi meretur. Dn. Brückn. de for. Int. & exterrn. c. II. §. IX. p. 51. 52. Ne autem in scyllam incidamus, dum charybdin vitare voluimus, illud hic monendum videtur, non semper & ubivis rigorem legis ita obseruandum, ut plane in nullo casu a diuino Numine poenam externam remitti arbitremur. Cicero pro Ligario: Nec in ulla re, inquit, propius homines ad DEVVM accedunt, quam salute hominibus danda. Bonus princeps non delinquentium poena semper, sapientia penitentia contentus est. Tacit. Agr. 19, 4. Amittit enim seueritas, quod maximum remedium haber, assiduitate auctoritatem. Seneca de Clem. I, 22, 3. Reges a DEO ter optimo maximo addiscere debent, resipicentes per penitentiam animos non aspernari, non obstat superplici.

plicibus, nullam postulantibus veniam abnegare: Obstinatos tantum proterere, & clementia potius, quam fetieritate amorem hominum promerer. In his omnibus cum DEVUM imitari dicantur, qui in his terris eius vices gerunt, necesse est, ut credamus, ipsum DEVUM, qui pater misericordiae audit, omnia hæc eminentiori quodam gradu exercere. Neque, reor, quenquam inficias iturum, DEVUM pro sapientissimo suo consilio, quo vniuersum hoc gubernat, sape permettere, ut poenæ forenses, legibus diuinis statutæ, haud executioni mandentur, & hac ratione de iis quasi dispensare; quod vel solum Caini fratricidæ exemplum quemvis conduce re poterit; unde saltim hoc colligere licet, DEVUM, salua sua iustitia, aliquando a poena legibus suis statuta facinorosos absoluere posse. Ais, tunc temporis poenam non exactam fuisse, ob generis humani, qualis adhuc erat, paucitatem, hinc, cessante tali causa, remissionem hanc non amplius presumendam. Id quidem facilime largior, dictam rationem allegari hodie non posse, non tamen exinde sequitur, quod DEVS nunquam tales poenas remittat: possunt namque alia rationes adesse æque prægnantes, ob quas DEVS nostris quoque temporibus simile quid aliquando concedat, licet quales istæ sint, exacte determinare non valeamus. Quanta, quæso, DEVS omni fere ætate toleravit, ut bonitatem, longanimitatem, sapientiam & vere paternum affectum hominibus ob oculos ponat? Sane multa perquam atrocia facinora in occulto perpetrata poenis externis eximuntur, salua manente diuina iustitia: hæc sane, si absque legis illius rigore persistere haud posset, credisne omnipotentem omniscientemque DEVUM toleraturum, ut vel minimum, delictum non reueletur & dignis suppliciis subiiciatur? Fert DEVS occulta, ut vniuerso mortalium generi commonstrat, illorum quoque

se habuisse notitiam, & ad iustitiam suam exercendam  
 hominum ope non semper indigere: Vna illa extremi  
 iudicii dies singula reuelabit, vbi qui promeritas poenas  
 hic effugere, animæ cruciatuſ æternos non effugient,  
 sed timidorum, incredulorum, & abominandorum, & homicida-  
 rum, & fornicatorum & veneficorum & idololatrarum & omnium  
 mendacium pars erit in stagno ardenti igne & sulphure, quod  
 est mors secunda: Apocal. XXI. 8. His iam præmisitis con-  
 cludo: quemadmodum summum nefas est, poenas di-  
 vinæ non curare obſeruare, ita quoque, vbi sapientis-  
 simum Numen poenas in sensus incurentes ex causa  
 ſibi ſoli cognita forte remiſit, ſi easdem judges exige-  
 rent, idem ſane agere viderentur, ac ſi illum ad ſuppli-  
 cium raperent, cui rex delictum ex gratia iamiam con-  
 donauit: quanta autem hac inuria fit, non eſt ut mul-  
 tis demonſtrem. Vbicunque ergo de hac Numinis vo-  
 luntate conſtat, merito a rigore iudex recedit. Iam ve-  
 ro, ut ad quæſtionem tandem reuertar, quæritur: num,  
 ſi per certum temporis ſpatium 5. vel 20. annorum de-  
 lictum quoddam manferit plane incognitum, adeo ut  
 index nullam de eodem quæſtionem inſtruerit, recte  
 præſumatur, diuinum Numen poenas in ſuo verbo di-  
 catas, remiſſis? Difficillima certe ad hæc responſio  
 eſt, interim quid mihi hac in re videatur, ſaluo pru-  
 dentiorum iudicio apponam. Et quidem ſi euueniat, ut  
 delicta, quaꝝ facile detegi potuiffent, vsque ad id tem-  
 pus, quo leges humanae impunitatem promittunt, in-  
 lucem non protrahantur, ſiquidem multis nocentibus multa  
 & DEVS & homines condonant. Grot. L. II. de J. B. & P.  
 L. II. C. XX. §. 4. n. 1. & not. Ziegler. ibid. non ſine diui-  
 na prouidentia sapientifima direktione id fieri quam  
 certissime ſum persuafus; Rationem, licet eam ſepi-  
 ſime fruſtra indagemus, potiſtimam hanc eſſe puto, ut  
 ſaluti animarum consulatur, & ſinceræ poenitentiaz lo-

ſcu

cus relinquatur, de quo eo minus dubitandum, quo certiores sumus de immensa DEI pro aeterna hominum salute, cura ac sollicitudine, & quod is nihil omittat eorum, quibus eadem promoueri posuit. Sed & si ad alia societatis, in qua peccator talis viuit, membra respiciamus, nec absque horum commode id fieri, inde pater, quod, si sceleratus diuinam hanc gratiam agnoscat, & resipiscat, hoc ipso infinita diuine misericordia luculento specimine totus fidelium ceterus, cui postmodum id facimus innotescit, haud parum erigatur, atque in fide & Numinis amore confortetur. Igitur, si quidem delinquens per illud tempus, quo facinus latuit, veram sinceramente penitentiam egerit, ad Salvatorem suum humili cordis contritione conueritus, peccata serio iam detestetur, hancque ~~negligenter~~ re & verbis per plures annos omnibus probauerit, ita ut de eiusdem fide & plenisima peccatorum per Christum facta remissione, noua vita & fructus spiritus testentur, quin ad paenae quoque humana cessationem recte argumentari queamus, non video quid impedit: certum namque est, DEO per Christi meritum, quod peccator hicce iamiam apprehendit, uberrime esse satisfactum, unde iam & ~~de~~ ~~re~~ ~~re~~ respectu DEI locum innenire potest. Quod Rempublicam attrinet, & scandalum eidem commisso criminis datum, hoc etiam per emendationem modo dictam compensatum creditur: Imo publicæ rei interesse videtur, ne talis e medio tollatur, nec optimo ciue, qualis est penitens, priuetur. Extra hunc casum vero, si peccator de facinoris impunitate solum sibi gratuletur, absque habita offensi Numinis poenitendique ratione, a poena in sacris litteris dictata iudices salua conscientia recedere nunquam possunt, quamcumque etiam Romani suæ præscriptioni vim adscribant: neque enim temporis decursu solo damnum Societati datum restituitur, tan-

tantum abest, ut sanctissimæ DEL iustitiae satisficeri putemus. Interim, cum ea quæ modo protulimus, definiri ob summam hominum fallaciam sèpius vix queant, & licet aliquando luculententer pateat, nolle diuinum Numen vt poena, quamvis præscriptione sublata, remittatur, cum tamen iudex, propter obedientiam legi ciuili debitat, id quod conscientia dicitat, statuere impeditatur, ea quæ ipsemet exequi non valet, DEO committat.

## §. XIX.

Cum de delinquente poenitente iam dictum sit, non inutile fuerit, illam quoque attingere questionem: Vtrum quis se ipsum accusare in conscientia teneatur, & an ad poenam, licet non condemnatus, obligetur? Equidem, cum accusatio vindictæ publicæ causa fiat, hæc autem ideo instituatur, ne delicta maneant impunita, neque hac spe homines ad peccandum inuitentur, pri-  
mum questionis membrum affirmandum videri posset; sed negatiua vtique verior est: licet enim ratione damni proximo illati unusquisque obligatus sit, vt se ad satisfactionem offerat, si sciat cui damnum intulerit; non tamen pariter obligatus est, vt se ad ad poenam publicam seu supplicium offerat, cum delictum semel in Republica admissum hac delatione infectum fieri nequeat. Stryck. de F. C. c. VI. n. 158. neque se ipsum quis infamare, sed famam suam potius feruare debet, in primis si delictum permanerit occultum. Nam quando de delicto publice constat, & iudex vigore iudiciorum ad inquirendum mouetur, tum absque dubio reus, nisi veritatem confiteatur, grauisime peccat, nouique criminis reus fit: extra hunc vero casum, naturalis illæ instinetus, quo homo ita ad sui conseruationem fertur, vt omnia quæ ad ipsius destructionem vergunt, summo risu auersetur, nunquam fere admittet, vt quis se ipsum prodat,

prodat, si mortis pœnam vereatur. Neque vllus facile reperitur, qui publicum bonum suo interitu promouere velit, nisi forte spes magni alicuius præmii ducatur, pro-  
vt nonnulli incitantur ad periculum præsens Reipubl.  
causa in se suscipiendum, cui tamen vt plurimum euadendi spes admixta est. Cum autem accusatio talem  
comitem non habeat, sed certissimum interitum minetur, per naturam fieri non potest, vt quis hoc modo  
sibi extrema acceleret, nisi maiori vi interna vel exter-  
na impellatur. Huc in primis refero insignes illos con-  
scientia stimulos, quibus, diuina Nemeli ita dirigente,  
malefici subinde tam misere excruciantur & agitantur,  
vt malorum finem, ipsam mortem, expetant, teque iu-  
dicio sponte fstant: unde appareat, tantum a diuini Nu-  
minis hoc pendere voluntate, vt hac via peccata occul-  
ta manifestentur: hinc si quando permittit, vt homo cir-  
ca occultanda peccata sua libertate naturali vtatur, re-  
seruatis DEI talia adscribenda puto. Agnouit forte hoc  
ipsum Pontifex in c. 21. X. de Accusat. quando in in-  
quisitionibus, de nullis dicendum nec quærendum es-  
se iubet, nisi quorum fama in vulgus fertur. Imo &  
iure ciuili propria delicta sponte reuelantes poenam ef-  
fugiunt, quale quid videre est in l. 5. §. fin. C. ad l. Iul.  
Maiest. vbi si quis in exordio inita factio[n]is, studio  
veræ laudis accensus, eandem prodiderit, præmio & ho-  
nore donandus, is vero qui v[er]o fuit factio[n]e, & sero,  
(adhuc tamen incognitam) consiliorum arcana patef-  
cerit, absolutione & venia dignus pronunciatur. add. l. 1.  
§. 26. ff. de quæst. Quo cum consentit ius canonicum, in  
can. 11. cauf. 12. qu. 1. ibi: si hoc ultro confitetur, parcitur illi,  
& oreatur pro illo: nec non ius Sax. lib. 2. Landr. art. 14. verb:  
Kommt er denn ohne den Todten vor Gericht / und bekens-  
net er es / ehe man über ihn klaget / und beut sich darum zu

§ (34) §  
recht/ man soll ihm sein Hass nicht verteilen. Vid. Carpzov.  
p. 3. qu. 149. n. 23. seqq.

### §. XX.

Per mortem etiam quis regulariter eximuntur foro iudicis & relinquitur foro DEI; Pendente quippe sententia, morte rei crimen extinguitur. *I. i. pr. ff. si pend. appellat.* Solet tamen & post mortem aliquando cadaver delinquentis iniuriam quadam affici, ut tristi rei exemplo alii a delictis deterreantur. Hinc qui sibi ipsis violentas manus inferunt, sepultura honesta priuantur, eorumque cadavera per fenestras deiecta, vel sub domus limine extracta, in locum infamem proiiciuntur. Glossa in LandM. L. 2. art. 31. n. 3. lit. B. Schneidevv. in §. Religiosum. n. 9. Inst. de rer. diuis. Wesenb. ad Schneidevv. in §. iuris praecepta. n. 5. Inst. de I. & I. Vid. I. 28. §. 15. ff. de poen. qualis sepultura canina dici confuevit. Carpzov. p. I. qu. II. n. 30. 31. Ab hac tamen poena eximuntur illi, qui tadio vita, vel impatiens alicuius doloris coacti hoc perpetrarunt. Idem dicendum de his, qui ex melancholia & vehementia quadam affectus abrepti se se internecioni dederunt, in his enim, cum recta ratione imperium admatur, & maleuolum propositum, quod praecipue delictum constituit, abſit, merito poena cessat, teste Carpz. d. qu. II. n. 39. Quid vero de salute eorum, qui hoc modo e vita migrarunt, dicendum? Evidem, si statum eorum & vitam ante morbum contractum vel affectum concitatum exactam consideremus, conjecturam quandam de hac capere licet, rectius tamen agit, qui a tali iudicio plane abstinet, iustissimo iudici, qui solus mundum iudicabit, hoc relinquens.

### §. XXI.

Definit quoque iudicis humani potestas, si lites iuramento fuerint decisæ: præcipius enim iuramentorum finis est, præcidere controværias litibusque impone finem. *Ebr. VI. 16.* vnde & in *l. 1. ff. de iure iuriū.* maximum remedium expedientarum litium dicitur iuris iurandi religio, quo præstito definitiue absoluituris, qui iurauit. c. 8. *X. de purgat. Canon. innocentiamque suspicio-* nibus grauatus iuramento ostendit. *C. fin. X. de iure iuriū.* Hinc in praxi non tantum quoad ipsam causam & actionem principalem, sed & quoad expensas & alia accidentia absoluitur. *Carpov. p. III. qu. ub. n. 78.* Dn. Struue tamen in *S. I. C. Exerc. XVII. §. 46.* in expensas talem condemnandum putat, si culpabilem suspicionis causam dederit. Licet autem haud raro accidat, ut iurantes, quo semet promerita poenæ subtrahant, periurium committant, id tamen iudex DEO, qui vindicta inuocatur, recte committit. Hinc in actis contra Michel D. und Anna Barbara M. de præfectura Zellensi ad Illustrem Facultatem Iuridicam ante paucos annos transmissis, notatum reperimus: Daß als D. den zuerkanten Reunigungs- Eyd wegen beschuldigter Schwangerung / reuertante licet impregnata, geschworen / ihr zugeredet worden / wosfern D. unrecht geschworen / die Sach Gott heim zu stellen / und ihm solches nicht vorzuwerfen / noch sich an ihm zu vergreissen. Huc tendunt verba der Jesu-nischen Ehe-Ordnung/ §. derohalben x. vbi dicitur: daß die verleugnete Heyrath / in Ermanglung gnugsamem Beweises oft dahin gestellet / und Gott dem Herzens-Kün diger befohlen werden muß. De iure quoque Romano periurium poena certa, publicorum iudiciorum lege non coercetur, sed vtioni diuinæ committitur per *l. 2. C. de reb. cred.* vbi satis arbitratur Alexander, contemptam

religionem iuris iurandi DEVM vltorem habere. vid.  
Struv. S. I. C. Exerc. XVI. th. LIV. & Carpz. p. I. qu. XLVI.  
n. 4. vbi prolixè diuersas hac in re Doctorum opinio-  
nes adfert, examinat, atque ad varia dubia, quæ mo-  
veri solent circa hanc quæfitionem, respondet. Neque  
vero DEVS periurii delictum atrocissimum relinquit,  
impunitum, sed maledictio venit in domum iurantis  
in nomine DEI mendaciter. Zach. V. 4. isque erit testis  
velox periuris. Mal. III. 5. & calamitates ipsos velut a ter-  
go sequuntur.

*Et quanquam DEVS haud poenas in tempore sumit,  
At post sumet: & hi, magne, mihi crede, rependent  
Ipsi atque vxores, & dulcia pignora nati.*

Vt Homerus L. IV. Iliad. de foederum violatoribus canit. Non manet impunitus, qui assumit Nomen DEI frustra. Exod. XX. 17. Idem hoc confirmant exempla quamplurima puniti periurii: Israëlitarum I. Sam. XXI. Saulis ibid. XIX. 20. Osee Regis. II. Reg. XVII. Zedekiae II. Panalip. VI. Alcimi pontificis. I. Maccab. VI. Andronici. II. Maccab. IV. quæ quidem allegantur a Carpz. d. l. n. 38. Evidem Papa Romanus haud raro ausus fuit hoc fidei vinculum, soluere, impunitatemque sanctissimæ huius legis violatoribus promittere; quam parum autem autoritas romana sedes hac in re habeat, suo multi experti fuerunt damno. Non possum silentio præterire insignia illa Rudolphi Anticesaris iamiam morientis huc facientia verba: *Huic enim (verbis vtor Carionis in Cbron. p. m. 578.)* iam expiraturo, cum dextra, quam in prelio amiserat, allata esset, nimis sero sclera & perfidiam pontificum detestatus: *Hec (castani Episcoporum agnen allocutus)* dextra est, inquit, *qua Imperatori promissam fidem confirmavi; Hec violata a me vobis impulsoribus fidei argumentum;* & nefarie perfidie pestre testis est, de qua vobis rationes reddenda erunt DEO. Unicum adhuc de punita a DEO perfidia addam exemplum:

Ladis-

Ladislaus enim Poloniae Rex cum Amurathe Turcarum Imperatore inducias pepigerat, dato pignore, hostia nimurum romanæ ecclesiæ ritu consecrata; rupta vero fide magnam ad Varnam oppidum Christiani a Turcis accepserunt cladem; Rex ipse Ladislaus periit cum Juliano Cardinale, quem Eugenius Papa miserat, vt ad pacem violandam Ladislaum impelleret & a religione iuris iurandi auctoritate pontifícia exsolueret. Tradunt non Turcarum tantum sed & Christianorum libri, Amurathem tunc in maximo discrimine constitutum, diuinum auxilium contra Christiani Regis perfidiam his verbis implorasse: *Christe! si DEVS es, v. Christiani tui de te perhibent, vindica perfidiam tuorum, qui te mibi dedere pignori & nihilominus pacem adeo religiose sanctiatis per summum scelus violarunt.* Eundem hunc perfidii vindicem Christiani iudices hodieque venerantur, eiusque animaduersioni tantum nefas saepius relinquunt. Si vero de dirissimo hoc crimine per signum aut indicium constet, nec in foro externo plane impunitum remanet, sed pro circumstantiarum diversitate, certa poena ex arbitrio prudentis iudicis coerceri solet. Carpzou. p. I. qu. XLVI. n. 40. sqq.

## §. XXII.

Neque etiam ciuium actiones secundum semper sortiuntur euentum, quippe quod soli diuinæ prouidentiæ proprium est, vnde & hic in diuini Numinis voluntate, acquiescendum. Hinc admodum cautus esse debet iudex, ne forte de futuris temere iudicans, Reipubli-  
damnum inferat: *hæc enim cum in incerto fint, nec a nostris consiliis pendeant, id saltem attendendum, quod praesenti conditione probe inspecta verosimile est eu- en- turum.* arg. l. in obsev. 114. de R. I. Est omnino, inquit Plin. 3. Epist. 31. iniquum, sed usu receptum, quod honesta consilia vel turpia, prout male vel prospere cedunt, ita vel probantur, vel re-

prehenduntur. Et Seneca de benef. in arduo, ait, est veri exploratio: eamus qua docuit verisimilitudo: sic serimus, sic nauigamus, sic militavimus, sic uxores ducimus, sic liberos tollimus: Cum omnium incertus sit euentus, ad ea accedimus, de quibus bene sperandum esse credimus: quis enim pollicetur ferenti preventum, nauiganti portum, militanti victoriam, marito pudicam uxorem? sequimur qua similitudo veri, non qua veritas trahit. Prudens ergo & sapiens iudex suas partes explet, si bene rebus examinatis, pro statu & tempore praesenti omnia mature considerat, atque inde consilium arripit, futura DEO commendat; Quod si igitur queratur, an ob inimicitias vel auerstationem animi, sponsalia fint, rescindenda? non facile ad dissolutionem procedat, ob infelicem, quem inde auguratur, matrimonii successum;

Nam hominum etate multa euenient huiusmodi:  
Capiunt voluptates, capiunt rursus miseras,  
Irae interueniunt, redeunt rursus in gratiam.  
Verum ira, si que euenient huiusmodi,  
Inter eos rursus, si reuersum est in gratiam,  
Bis tanto amici sunt inter se quam prius.

Quemadmodum enim sol, cum e nubibus exit feruentior est: ita amor, cum intercessit ira, aut suspicio, reconciliatis animis iucundior existit. Sc disidia, pugna, iurgia inter coniuges vel despontatos non id statim efficiunt, vt matrimoniale vinculum soluatur, sed mox in gratiam redeuntes ardenter & instantius sese amare solent. Igitur si consummationem sponsaliorum per nuptias, non obstantibus inimicitias, tali in casu suadeat iudex, neque forte res ex voto cesserit, hoc ipsi haud magis vitio verti poterit, atque Ducisegregii & boni Imperatoris nomen obscuratur, si is iuxta rei militaris praecepta acies instruxerit, pugnam inierit, licet parum prospera subsecuta fuerit fortuna. Nimirum DEO exitus rerum

com-

commendandi sunt incerti; Id quod obseruarunt  
illustris facultatis iuridicæ, in hac alma Salana As-  
sessores excellentissimi, in sententia an. 1678. Gvelferby-  
tum perscripta, quando sponsalia ob superuenientem  
sponsæ auersationem haud dirimenda, sed consumma-  
tionem illorum iniungendam esse, certo modo iudica-  
runt, his inter alias adductis rationibus: Weil unter  
Eheleuten selbst manchmahl solche Wiedervertigkeiten sich  
zutragen / umb welcher Willen doch nicht eben das Band  
der Ehe / und nicht einmahl die cohabitation getrennet und  
ausgehoben wird. Zu dem der Ausgang ungewiss und  
Gott zu befehlen; auch derselbe durch fleißiges Gebet /  
umb beständige Vereinigung der rechtmäßig und ordentlich  
verlobten Herzen und Gemüther / vielmehr anzurufen / als  
auff die Trennung aus solchen Ursachen / zugedenken. L. B.  
de Lyncker, Dec. 482.

## §. XXIII.

Quemadmodum tractus futuri temporis ad officium  
iudicium haud pertinet, l. n. §. fin. de recept. arbitr. l. i. §. 1.  
de usur. ita hi de prateritis vel praefentibus actio-  
nibus suo munere defungi nequeunt, nisi de causa  
controuersa satis fuerint informati, & omnes cir-  
cumstantias, qua in facto contingere possunt, probe-  
consideraverint. Nam in decidendis causis, ex re, lo-  
co, tempore aliquique sub cogitationem vix cadentibus  
multa evenire possunt, quorum vel minima mutatione  
ius quoque variare, in confessu est. Hinc Plinius VI.  
Ep. 20. faciendi aliquid, inquit, aut non faciendi ratio, cum  
horum ipsorum, tum rerum etiam ac temporum conditione  
initur. Quæ & causa est, cur humani iuris conditio sem-  
per in infinitum decurrat: multas enim formas, edere,  
natura nouas deproferat, quæ deinde statum rei eiusue  
qualitatem immutant. Vnde ipsi Principes multa peni-  
tus legibus haud determinant, sed horum definitionem  
pru-

prudenti iudicantium arbitrio ac solerti praesidum iudicio relinquunt, veluti Hadrianus Imp. Praesidi cuidam rescribebat: *in re tali dijudicanda, Tu magis scire potes.* Nec obstat, quod, si quædam negotia emergant, quæ adhuc legum laqueis nondum sunt innodata, judices augustinum implorare remedium jubeantur ab Imperatore, quia ideo imperiale fortunam rebus humanis DEVS præposuit, vt possit omnia quæ nouiter contingunt & emendare & componere, & regulis competentibus tradere. Id enim ad casum talem, qui plane nouam legem desiderat, non vero ad applicationem juris constituti ad factum pertiner. Sane ad ferendam sententiam atque controversias definiendas, nec sola legis autoritas vel facti saltim cognitio sufficit, sed utrumque una concurrat, necessum est, ne vel summum ius, si non recte applicetur, summa fiat iniuria, aut quæ sine auctoritate legali statuuntur, frustranea evadant. Evidem in l. 74 ff. de Jud. & c. 4. X. de caus. poss. & propr. iubetur iudex, rem de qua cognovit, etiam decidere, atque sua sententia litu finem imponere, nec non in l. 13. §. 2. ff. de recept. qui arb. condemnare reum aut absoluere. Cessat tamen hæc ipsa regula, si iudex, prout modo dictum, causam nondum satis cognoverit, veluti hic ferendarum sententiarum modus Romanis olim comprobatus. Diligens namque ille fori Romani indagator, Franc. Pollenus in Hisp. For. Rom. L. V. C. VIII. p. m. 465. adnotauit; sententiam laturis singulis ternas datas fuisse tabulas, vnam insignitam impressione elementi A, quod symbolum erat abolitionis: alteram duplicitis elementi N. L. i. e. non liquet, indicis ampliationis: tertiam litteræ C. i. e. condemnationis, cuius loco Græci suum & infame b. affigebant, certissimum bavd̄s & mortis argumentum. Quod si numerus tabularum N. L. præponderasset reliquis, iudicium differebatur & res diligentiori disquisitioni committitur.

mittebatur: vbi vero plures tabulae vel absolvitoriae vel condemnatoriae aderant, tum illi qui nota N. L. usi fuerant, plane non iudicabant: Porro in i. 36. ff. ac re iudiciorum ex Pomponio refertur: si vni ex pluribus iudicibus de librali causa cognoscenti, de re non liquat, ceteri autem consentianti, si is ianuarii: sibi non liquet, eo quiescente, ceteros qui consenserint, sententiam proferre debere. add. l. 27. §. 2. in f. ff. de liberali causa. Index igitur postrema sententia tantum illud, quod sibi liquet, prodere debet l. 22. C. ad l. Corn. de falsi. Facit, hoc locus Senecæ Ep. 8. Aut fer sententiam, aut quod facilius est, in huiusmodi rebus nega tibi liquere. Exemplum huius Gellius perhibet, apud quem pecunia petebatur, quæ dicebatur data numerataque: Petitor vir bonus, notæque & experta fidei, vitaque inculpatisima, neque tabulis neque testibus factum docebat, & argumentis nitebatur exilibus. Is a quo petebatur, probri perfidiarumque ac fraudum plenus, postulabat probari consuetis modis pecuniam datam, expensi latrone, mensæ rationibus, chirographi exhibitione, tabularum obsignatione, testium intercesione. Horum cum nihil fieri posset, Gellius suum iudicium suspendit. Recenset hæc Bæclerus Diff. Acad. XVII. quæ titulum præfert de Judiciis. p. edit. secunda 637. Imo & in sacris litteris rei huius inuenimus vestigia; ex Deus. quippe XVII. 8. seqq. tales ordinem in iudiciis observandum esse docemur, vt scilicet indices inferiores, quum eis oblata est causa difficultis, ex qua expedire se non possunt, causam illam deferant ad iudices superiores, nec ipsi iudicent, sed superiorum iudicium, exequantur. Diserta sunt verba v. 8. Si occulta erit res tibi in iudicio ferendo, (vel difficultor quam ut assequaris) inter cedem & cedem, inter item & item, aut inter plagam & plagam, et rebus controvëris intra portas tuas: tunc surgens ascendes ad locum quem elegerit Iehoua DEVS tuus; Et adibis sacerdotes leviticos, vel ad summum iudicem qui erit diebus illis: ut consulas eos.

eos, & indicent tibi statum illius iudicii. Deinde facies ex praefato illius sententia quam indicauerint tibi &c. Cum igitur bene multa sint, quæ omnem mentis humanae aciem fugiunt, adeo, ut nec summis imperantibus, nec sapientissimis consultissimisque viris de iisdem liqueat, eas omnia ad supremum omnium Iudicem diiudicanda recte referuntur; satius præterea est ea, quæ iudices in his terris penitus indagare non valent, intacta relinquere, cum in his facile errare & labi, aliisque irreparabile damnum inferre possent. Hunc vero scopulum beneficio Commissionis DEO factæ index tuto præteruechitur.

## §. XXIV.

Ob ingenii mortalis imbecillitatem variaque ipsarum rerum vitia, sola iudicis autoritas ius inter partes facere non potest, sed requiritur, ut is in decidentis causis sequatur id, quod conuenit eum ex fide eorum, quæ probabuntur sequi l. 6. §. 1. ff. de off. pref. Tenetur quoque secundum leges & consuetudines iudicare, pr. Inst. de off. iud. atqui leges volunt, omnem rei veritatem confistere in ore duorum vel trium testium. l. 12. ff. de test. vnde tandem illud consequitur, teneri iudices iudicare secundum acta & probata, ad quod & a Iustiniano iuramento adstringuntur, in l. 14. C. de Iud. ubi iuberur Iudex secundum veritatem iudicare, constat autem ex l. pen. ff. de probat. veritatem dici id, quod probatum, aut per legem rescriptum est. vid. l. vlt. §. vlt. C. de appellat. can. 4. caus. 3. qu. 7. idque adeo verum est, ut nec supremi Principis rescriptum in medio litis interueniens attendi debeat. Non. 82. c. 13. Ordin. Cam. Imp. p. 2. tit. 35. Churfürstl. Sächs. Ober-Hoff-Gerichts-Ordnung / de anno 1549. tit. daß dem Ober-Hoff-Gerichte sein starker Lauf soll gelassen werden. Omnia hæc quidem rectissime sese habent, modo probata atque allegata illa rem, quæ coram iudicio agitur, illustrent, eandemque sufficient-

ficienter atque reuera probent: talia enim si fuerint, salva conscientia eadem sequitur iudex. Neque vero fieri potest, ut conscientia eius, ipsi veritati reclamet, quia potius talis conscientia in veritatis cognitione, atque exinde prognata conclusione consistat. Videmus hinc, inter acta & probata & inter conscientiam hac ratione consideratam, minus recte repugnantiam constitui. Sane probata illa, qua falsitati inuituntur, hoc nomine haud sunt digna, sed ceu illegitima a iudice, qui de contrario plene conuictus est, merito reiiciuntur, per l. 6. pr. de off. presid. & l. 13. ibid. Itaque ex dictis sequitur quod iudex secundum acta & probata iudicans, utique etiam secundum conscientiam iudicet. Ast, quid, si haec inuicem discrepant? Inquirendum erit sedulo, a cuius parte stet ipsa veritas, & quicquid huic contrariatur, reiiciendum; contra hanc enim si iudex quid statuit, fit periurus & abit in consilia impiorum. Psal. 1. Proverb. XXIV. n. 12. DEO bonisque omnibus sese reddit iniustum, conscientiam depravat, vitamque omni spe bono que reddit destitutam: adauget illam timore, angore, tristitia, suspicione, curis, malisque omnibus, quibus miserias illas & parum consideratas verborum captiunculas frustra in medelam adhibebit, qui sibi ipsi hac ratione factus est quam infensissimus. Quod si vero iudex non ita facile, quid rectum sit, discernere poscit, tum vero rem vltiori disquisitioni committat, sententiam, usque dum certus factus fuerit, differens: dubia enim conscientia nihil agendum esse, alibi traditum. Quae iam dicta sunt, eminentiori quodam gradu ad illos spestant, qui summi in his terris imperium tenent, atque DEI vices gerunt, cum ipse DEVS in veritate sit & veritas sola, atque odio prosequatur mendacia, qua abominatio sunt in oculis eius. Facile hinc colligere licet, salua & illata conscientia Principes dissimulare non posse delicta

quæ DEVS puniri iubet: qui enim hoc facit, ipsius sceleris sese participem reddit, prout sapientissimus Regum Salomo testatur, dum mandatum patris executurus, ita Beniax precipit: Occide hominem, ne sanguis ab eo profusus mihi domuique patris mei imputetur I. Reg. II. 31. Simili modo reatu capitalis criminis solebat sese inuoluerre Henricus II. Rex Francorum, sed Italum quendam, in capitali scelere a se deprehensem, licet eundem, quod probationes deficerent, iudices sua sententia non condemnauerint, tamen, vt dignas facinoris poenas lueret, noctu flumine demersit. Regis officium hoc agnouit, etiam Henricus IV. itidem Gallia Rex, de quo Hardouin de Perefixe in *Recueil de quelques belles actions & paroles memorables du Roy Henry le Grand.* p. 544. ita scribit: Il dit encore vn jour a vn homme de condition, qui lui demandoit grace pour son neuveu, qui auoit commis vn assassinat: Je suis bien marri, que ie ne vous puis accorder ce que vous me demandez, il vous sed bien de faire l'oncle, & a mois de faire le Roy; J'excuse vostre requeste, excusez mon refus. Ad officium iudicium modo allegatum spectant, quæ de eodem Rege ibidem referuntur. p. 541. Il ne pouuoit voir qu'avec auersion les Prelats de mauaise vie & les iuges corrompus: il disoit des premiers: je voudrois bien faire ce qu'ils preschent, mais ils ne pensent pas, que je sache tout ce qu'ils font; & des autres, je ne puis comprendre, comme il y a des gens si méchans, qu'ils ingent contre leur science & leur conscience. Conferatur Schroeter. in cas. cons. cas. XXXII. qui errorem, quem Grotius hic errauit, detegit & simul solide refutat. Si vero iudicii prater acta & probata de causa controndersa plane nihil constet, tum praescriptam a legibus formulam obseruet. Illos vero qui probationibus legitimis deficiunt, iuuare aliter non poterit, quam vt eosdem ad diuinum tribunal remittat, prout hoc ipsum præiudicio confirmat L. B. de Lyncker. dec. 1186. verb. Hingegen seynd Beklagte/ in ihrer Wies-  
der

verklage / so schlecht bestanden / daß sie es selbst Gott  
befehlet wollen / in dem sie nichts von ihrem Angeben  
erwiesen. Quia enim probari non queunt , occulta sunt,  
& humano foro eximuntur , arg. can. fin. caus. XXXII. qu. 5.  
& soli cordium scrutatori , cui nota , iudicanda relin-  
quuntur.

## §. XXV.

Similiter , quando is conuenitur , qui ob inopiam  
sux obligationi satisfacere impeditur , actor in foro hu-  
mano querelas suas , si effectum spectes , frustra pro-  
ponit. Inter potissima quidem iuris præcepta habetur :  
*suum cuique tribuere:* & iudici cuius hæc prima cura esse  
debet , vt iustos dominos in rerum suarum possessione  
tueatur , si quæ vero iniuste ipsis denegentur , eorundem  
restitutionem , quantum quidem penes ipsum stat , pro-  
curet ; iniquum quippe est , non tribui cuiquam , quod  
ei debetur . Hugo Donell. in l. 2. §. mutui datio. n. 7. ff. si  
cert. pet. Ast , cum ad rem vel obligationem prestandam  
requiratur , vt illius præstatio vires nostras , non exce-  
dat neque lege aliqua prohibeamur , inanis sapientis insti-  
tutior actio . Fluxit hinc tritum illud ; impossibilium  
nullam dari obligationem , de quo effato vid. Puffen-  
dorff. de I. N. & G. L. III. c. VII. §. 2. securus Paulum in  
l. ult. ff. que sent. sine appell. ubi tradit , impossibili-  
te præceptum iudicis nullius esse momenti . Hoc  
ipsum etiam obtinet , licet res , de qua queritur , talis  
sit , vt aliquando præstari potuerit , successu temporis  
vero in aliud statum peruenit , inde demum ac-  
cidit , vt quod quis optimo quidem iure exigit , nancisci  
nequeat . Exemplum habemus in debitore obxato , &  
ad extremam inopiam redacto . Quanquam enim alias  
in iure nostro illi debitores appellantur , a quibus etiam  
inuitis pecunia petitur . l. 108. ff. de V. S. & qui ad extre-  
mum denarium excuti possunt , Gloss. ultim. in l. pen. de-  
cif.

cess. bon. attamen vix ullibi iustum est, vt is qui in uniuersum  
 ex accidenti, non supina negligentia, res suas amisisse traditus  
 est, denuo per vim ad ignominiosam vitam transponatur & ad  
 quotidiani vietius nec non amictus corporis inopiam adigatur. prout  
 loquitur Imp. noster. Nou. 135. pr. Monentur hinc in le-  
 gibus creditores, vt misericordiae memores sint, &c. nisi  
 singulares circumstantiae aliud suaserint, si eatenus fa-  
 tisactum fuerit, quatenus debitores facere possint, ac-  
 quiescant, l. 6. ff. de Cess. bon. verb. si quid misericordie cau-  
 sa ei fuerit relatum, & ratio habeatur eius, ne egeat qui  
 condemnatur. l. 173. ff. de R. I. Facit huc præceptum Sal-  
 vatoris; quicquid volueritis, vt faciant vobis homines,  
 idem vos facite illis. Quod si vero debitor per cessionem  
 bonorum omne ius suum abdicauerit, cum iam ni-  
 hil quod soluat superfit, ne quidem ab aliis, quibus de-  
 bet, potest inquietari, l. 4. §. 1. ff. de cess. bon. Vnde Ca-  
 ius in l. 6. ff. de dolo recte ait: *is nullam videtur actionem*  
*babere, cui propter inopiam adversarii inanis actio est.* Adti-  
 pulatur & Pontifex Innocentius III. in c. 16. X. de Restit.  
 spoliat. inanem itidem actionem vocans; quam inopia  
 creditoris excludit, add. l. 24 ff. Mandat. l. 24. §. 2. ff. de  
 liberali caus. Idem sibi velle videtur dicterium nostris ad-  
 modum frequens; Wo nichts ist/ da hat der Kaiser sein  
 Recht verloren. Interim tamen non desinit plane actio,  
 arg. l. 74. in f. de Euill. sed si debitor facultatem soluendi  
 denuo fuerit adeptus, tum utique ad restitutionem com-  
 pellitur, d. c. 16. X. de Rest. Spol. l. 3. C. de bon. aut. iud. poss.  
 Nimia saltim illa acerbitas legibus XII. Tab. olim in-  
 debitores licita, & addictio in seruitutem iam a Constan-  
 tino sublata est, l. nemo. 2. C. de exact. tribut. que & in-  
 Rec. Imp. de ann. 1527. c. 17. prohibita. Plus enim petit,  
 qui corpus hominis pro re debita detineret; Nisi adsit  
 obligatio ex delicto, aut contumacia, vel suspicio fugax  
 his enim casibus debitor carcere coercetur, l. 4. C. de seru.  
 fugit.

*fugit. l. 7. §. 3. ff. de Idic. l. final. ff. de in ius voc. l. 1. §. 3. ff.*  
*de poen. Inopia igitur efficit, vt creditores a iudicibus sa-*  
*pe repellantur, ipsi vero debitores quadammodo absolu-*  
*tione gaudent. Hic iterum ad diuinum Zelotem refu-*  
*gium est quærendum, quod illi, qui suarum rerum ia-*  
*ceturam iniuste faciunt, hac sape formula testari audiun-*  
*tur. Der oder jener wird es vor Gott einsten schwer zu-*  
*verantworten haben / daß er mich umb das Meinige so un-*  
*rechtmäßiger Weise gebracht hat. Item. Ich muß das Meis-*  
*ne zwar dahinden lassen / es wird aber Gott solches unrecht*  
*zu seiner Zeit gewis rächen. &c. Soler quidem aliquando*  
*in illos a legibus animaduerti, qui supina negligentia,*  
*prodigalitate vel insigni quadam malitia in extremam*  
*inopiam sese coniecerunt, nec quæ mutuo acceperunt,*  
*reddere possunt. Meu. de Arrebs. c. VIII. n. 158. non enim*  
*vult DEVS, vt ignauï & desides alieno alantur sudore,*  
*sed quilibet sui laboris emolumento fruatur ; Quod si*  
*tamen debitor non sua culpa in paupertatem prolabatur,*  
*sed casu fortuito, quem nullum humanum consilium,*  
*præuidere potest. l. 2. §. 7. ff. de administr. rer. ad ciuit.*  
*pertin. misericordia vtique is dignus habendus est ; Cum*  
*vero legitima causa inopie sepius allegetur, quæ talis*  
*non est, vel nulla plane appareat, aut faltem non ita lu-*  
*culenter doceatur, iudex merito in his, quæ certa sunt,*  
*legum statuta sequitur, inopem vt diximus, absolvit,*  
*causas vero paupertatis, quæ homines fugiunt, DEO*  
*relinquit examinandas, qui solus, quæ in intimis reces-*  
*sibus sunt, perspecta haber, & fraudes mortalium suo*  
*tempore condigno supplicio vindicat.*

## §. XXVI.

Inter commissa DEO facta suo modo etiam Sors est  
referenda, si per illam litibus finis imponitur; nam &  
hac ratione sententia sua iudex nihil definit, sed rem  
dubiam euentui fortuito committit, atque diuinæ prouis-  
dentia

gentiæ directionem veneratur. Neque de iustitia huius rei dubitandum, cum adsit consensus illorum, quorum intereat, adeoque qualiter etiam res cesserit, volenti iniuria minime fieri poterit. Sortem quidam dici putant, quod seriem & ordinem in casibus dubiis patesciat. Meissner. *philos. sobr. part. II. c. II. qu. I. p. 602.* quæ euolutio vocis, licet cum regulis etymologicis, partim convenire videatur, rem ipsam tamen satis bene explicat. Potissima eiusdem diuisio est, quod alia sit diuina, alia politica & humana; quæ iterum triplex statuitur, diuiforia sc. consultatoria, & diuinatoria, de quibus abunde tractant Theologi Scholastici, vid. Carol. Molin. *I. part. Consuetud. Paris. And. Tiraquell. de iure primogen. qu. 17.* De sortibus & sortilegiis forma, quæ in ferendis suffragiis Veneti vtuntur, & creatione pariter atque electione suorum Magistratum vid. Caspar Contarenus *quinq[ue] libris, quos de Magistratibus & Republ. Venetorum scripsit.* De mysteriis vero vanis, quæ antiquissimis iamiam temporibus homines in sortium arte quæsuerunt, sese ad omnia diuinitatis secreta hac ratione accedere posse reputantes, multa pererudite congesit Marshamus *in canone Chron. sec. XVI. p. m. 474. sqq. qui p. 481.* suam de sorte illa tractationem hunc in modum concludit: *Ceterum tanta vetustas, tantumque populorum studium artem fallacem, irriterat, inanem esse arguant; cum illa non minus bodie incerta sit, quam olim; neque adhuc inueniri posse ullum, cui innitatur, veritatis fundamentum.* Sortes nempe hic intellige curiosas, superstitiones & magicas, ut sunt Geomantica, Arithmantica & quæ tessellis, herbarum foliis, cineribus, aliave ratione exercentur; has tales enim usurpare, & ignota vel futura ex iis indagare, minime concessum est, cum eas diuina vox Deut. XVIII. 10. u. diserte prohibeat. Quin & Cicero L. II. de Diuinat. Hanc rem, ait, toram inueniāt esse fallacie, aut ad quæstum aut ad superstitionem aut ad erro-

errorem excoquatus, confitiam quæ hac de re differit Puf-  
fendorff, de I. N. & G. L. II. C. IV. §. 4. Aliud plane di-  
cendum de illa sorte, quam Augustin. in narrat. Psalm.  
XXXI. 60. Tom. VIII. p. 176. definit, quod sit res in dubia-  
tione humana diuinam voluntatem indicans. Huius vero usus  
iure diuino non est prohibitus. Schilte. Manad. phil. Mor.  
C. IX. §. IX. potius de eadem vox exaudienda est Regum  
sapientissimi Proverb. XVI. 33. Sortes mittuntur in finum, sed  
a Domino temperantur. In hoc enim immortalis DEI no-  
stræ prouidentia & rerum humanarum gubernatio sese  
exerit quam maxime, ut hinc impium plane & Christia-  
no homini indignum sit ethnicum commentum, deo nimirum  
Fortuna quicquam tribuere. Diuinx fortis exempla in  
sacris occurruunt passim, veluti I. Sam. X. 20. 21. vbi Saul  
Rex populi Iudaici primum forte electus dicitur, post-  
quam scilicet iam antea a Samuele iussu DEI in regem  
vncius fuerat. Et Acto. I. 26. de Apostoli Matthiae elec-  
tione per sortem facta diserta verba sunt: Καὶ ἐπέστη ὁ  
αλῆγος εἰς μαρτυρίαν. Vnde clerici nomen vulgo deri-  
vant: confer. Ion. I. 7. Ios. VII. 14. vbi Iosua furem ana-  
thematum forte inuestigavit. Ast haec fortis, et si diu-  
nitus demandata fuerint, monente tamen Diuo Hiero-  
nymo in Comment. in C. I. Ione, non temere debent in exem-  
plum trahi, cum priuilegia singulorum non possint le-  
gem facere communem. In primis illum scelerum auto-  
res inquirendi modum sine peculiari mandato diuino  
imitari, valde periculosest est, cum fieri posset, ut Sa-  
tanæ dolis aliquis insons periculo sic exponatur. Sane  
nullum dubium est, quin illis Germanorum priscorum  
iudicis criminalibus, quæ siebant per duella, ferrum  
ignitum, aquam feruentem & similia, de quibus vid.  
Iusti Georgii Schottelii tractatus von unterschiedlichen  
Rechten in Teutschland, innocentes sapient ad suppli-  
cium rapti, ipsi vero criminum rei promerita poena

exempti fuerint, unde superstitiona hæc atque impia  
 plane a iudiciis Christianorum merito remouentur. Au-  
 tor anonymus elegantissimi libelli du Traité du Point d'  
 honneur p. 160, cum de iudiciis istis mentionem fecisset,  
 recte subiicit: *Etrange aveuglement de tenir Dieu, & de*  
*donner des loix a sa volonté toute independente & toute souve-*  
*raume!* Oritur hic quæstio; an, si duo vel plures simul  
 delictum commiserint, ad mortem condemnati ante  
 executionem recte sorti committantur? aut si plures sint  
 delinquentes, per decumationem quidam poenam subii-  
 ciantur, alii ab eadem liberentur? Quod prius attinet,  
 Grotius in affirmatiuam inclinat, quando L. II. de I. B.  
 & P. c. I. §. 15. scribit: *Ex his, que diximus, apparet, duobus*  
*modis posse contingere, ut a primitatis suscipiantur singularis dimi-*  
*catio: primum si unus ex concedat alteri licentiam dimicandi, alio-*  
*qui cum occisorus sine dimicatione: Deinde, si Rex aut Magistratus*  
*duos mortem meritos inter se committat; quod si fiat, illis*  
*quidem licebit arripere spem salutis, at qui id iussit, minus recte*  
*officio functus videbitur; cum satius fuisset, si unius supplicium sus-*  
*ficere videbatur, sorte eligi moriturum.* Zieglerus ad h. I. Gro-  
 tii diuersum statuere videtur, verb: *Ut vero inter paucos*  
*eiusdem criminis reos aliqui eximantur, aliqui vero poenis afficiantur,*  
*non videtur iustitia conueniens.* Gerhard. loc. de Magistratu.  
 Ast facilis ad hæc redditur responsio, si cum aliis distin-  
 guamus inter crimina, quorum poena a iure diuino de-  
 terminata & capitalis: & inter crimina, que saltim ob le-  
 gem positivam ciuilem capitali poena coercentur. Priori  
 casu, vt pote in quo dispensatio & condonatio vita ho-  
 minibus non est permitta, sortitio salua conscientia a  
 Principe decerni nequit, sed vterque delinquens pro-  
 merita poena est afficiendus. Posteriori vero casu sorti-  
 tio admitti poterit, e. g. quando duo simul furati sunt,  
 vel aliquid crimen militare commiserunt: sic enim pe-  
 nes eum qui legem capitalem tulit, erit quoque de ea-  
 dem

dem dispensare: Et sane quilibet bonus Princeps in hoc pronus esse debet, siquidem, vt Seneca *de Clem.* l. 24. ait: Non minus Principi turpia sunt multa supplicia, quam medico multa funera. Ferina ista rabies est, sanguine ac vulneribus gaudere. Cui geminum est illud *Claudiani in panegyr. de Cons. Mellii.* 223.

*Qui fruatur poena ferus est legumque videatur  
Vindictam prestat sibi.*

Remittendus ergo nonnunquam poenarum rigor, vt Princeps crudelitatis suspicionem, quæ ex suppliciorum frequentia nascitur, effugiat, ciuiumque amorem sibi conciliet, hoc ipsum vero melius facere non poterit, quam si fortè aliquando adhibeat: ita enim odia ciuium haud in se convertit, cum supplicia non de suo, sed fortis profiscantur iudicio. Huc vero si verba Grotii: si unius supplicium sufficere videbatur &c. tendunt, eius sententiam probandam esse plane censeo. Ad alteram propositæ questionis partem; An, ubi tota quadam vniuersitas deliquit, decumatio locum sortiatur? recte iterum responderet Grot. *L. III. de I. B. & P. C. XI. §. 17.* ubi dilecta sunt talia ut morte dignæ videri possint, misericordie erit, ob multitudinem eorum, aliquid decadere de summo iure. In singulos enim, prout Seneca 2. de Ira cap. 19. loquitur, severitas Imperatoris disstringitur: at necessaria est venia, ubi torus deseruit exercitus. Quid tollit iram sapientis? turba peccantium. Cumque poenarum finis sit, non solum vt perent nocentes, sed & vt alii poenis a sceleribus deterreantur, mores ciuium emendentur, atque salus publica promovetur, recte Salustius ad Cæsarem. Neque quisquam, ait, te ad crudeles poenas aut acerba iudicia invocat, quibus ciuitas vastatur magis, quam corrigitur. Igitur decumatio quidem, vt sanguini humano parcatur, admittenda, ita tamen, ne per hanc ius DEI vlo modo lœdatur. Diuinam namque

52

que poenam promeruit Saul, quod, cum ipsi omnimoda Amalekitarum deletio diuinitus fuisse demandata, sola clementiae laude Agagum Regem conseruauerit.

2. Sam. XV. In causis quoque ciuilibus frequens sortium usus confpicitur: Ita fors obtinet in diiudicatione actoris & rei l. 14. ff. de Iud. & ne iudex vlli ex hereditibus fauere videatur in distribuendis portionibus hereditariis sorti res committitur. vid. Ias. in l. 3. C. com. vir. Iud. Coler. Def. 54. Carpz. III. c. 15. def. I. porro in optione, legata. §. 23. Inst. de Legat. l. vlt. C. com. de legat. Hunc sortis usum in factis eriam expressum legimus. Prou. XVIII. 18. ubi contradictiones fors comprimeret & inter potentes quoque diiudicare, dicitur. vid. Puffend. de I. N. & G. L. III. c. II. §. 5. & de O. H. & C. L. I. C. VII. §. 4. Dignitates quoque & officia sortito offeruntur; quod laudabile institutum Romanis sepius tribunt Tacitus, Annal. I. 54. III. 58. 71. XV. 19. & in Agr. c. VI. & XLII. qui etiam L. IV. Hisp. c. 8. huius rei causam Romanos hanc habuisse dicit: ne ambitioni aut inimicitiis locus foret. Sacerdotium porro sorte datum, notat Cicero IV. in Verrem, his verbis: Inbet ille sibi legem legi, recitat, in qua scriptum erat, ut quoniam renunciati, tot in hydriam sortes conicerentur, cuius nomen existet, is ut haberet sacerdotium. Antiquissimum sortium usum in bello fuisse tam aliunde, quam ex Homeri L. III. Iliad. constat, qui tradit, Achillem & Hectorum monomachiam inituros, in galeam sortem misisse, ut priorem iectum insfigat. Singularia huiusmodi certamina, bella representativa vocari solent, quae ideo instituuntur, ne totus populus malis grauisimis, quae bellum comitantur, impliceretur. Vid. summe reverendi D. D. Buddei Elem. phil. pract. part. II. C. V. sect. 4. §. 6. In genere igitur negotia grauia, quae humana prudentia vel industria expediri rite nequeunt, sortibus subiici recte posse, ipsas vero sortes,

SS (53) SS

tes, si cum timore DEI adhibeantur, ab ipso DEO quoque gubernari, hinc elucescit.

§. XXVII.

Hactenus quosdam casus allegauimus, in quibus propter defectum aut insufficientiam, ut ita loquar, fori humani, superiores inferiorum actiones DEO iudicandas relinquunt. Nunc quoque de illis dicendum, in quibus hi, qui superioribus subsunt, itidem, quod judice careant, quædam ad Deum, tanquam summum Monarcham & vindicem, referre coguntur. Huc in primis pertinent ipsorum Regum & summarum potestatum facta. Licet enim laudatissimi Imperatores Theodosius & Valentinianus in l. 4 C. de ll. rectissime sentiant; *dignam vocem esse majestate regnantis, legibus alligatum se principem profiteri: atque de auctoritate juris suam pendere auctoritatem: Et revera maius imperio esse, submittere legibus principiaum.* Attamen nemo est, qui principi leges praescribat, sed hoc peculiare est summarum potestatum priuilegium: neque DEVS vllam in terris constituit potestatem coactivam, quæ illos punire poscit, si contra leges naturæ circa suos subditos peccauerint. Cumberland. de Leg. nat. p. 387. & secundum Plin. in panegyr. c. 6. in principatu illud beatissimum, quod nihil cogitur. Reges quippe nullis ad prenam vocantur legibus, tucti Imperii potestate, & Maiestas in republ. alios omnes iudicat, ipsa est auctoritas, & qui hac prædicti sunt, ab alio iudicari nequeunt, sunt enim, verbis vtor Taciti Ann. III. c. 58. 59. hominum summi, rectores generis humani atque Deorum instar. Hinc secundum Vlpianum in l. 31. ff. de ll. soluti legibus esse censentur, eorundemque auctoritati tantum deferunt iurisprudentes, vt, quod ipsis placuerit, legis habere vigorem assertere non dubitant. in l. I. ff. de Constat. princ. Hæc tamen ita accipe, vt inde eximas leges diuinæ, item naturæ & rectæ rationis, nec non conuentiones & contrata.

Etus, quibus princeps fidem suam adstrinxit: Nam ut recte Horatius L. III. Od. 1. Reges in ipsis imperium est Ionis. Agnouit hoc Chlotharius, qui Francorum principatum sub finem seculi VI. gesit, dum morti vicinus, hanc memoria dignam vocem edidit! *Vah! qualis, putas, Rex est ille celestis, qui tam magnos Reges interficit.* Et Agapetus Diaconus in Basiliis c. 68. καὶ οὐκ οὐκοντιστεῖν, οὐδὲ πανταχοῦ τέθησαν. h. e. Rex quidem Dominus est omnium ipse vero una cum omnibus servus DEI est. περὶ τῆς ἀνταρχίας ὁ θεὸς μόνος καὶ μόνον δικαῖος: Principis solus DEVIS index esse potest. Inquit Marcus Antoninus apud Xiphilin. p. 271. Idem Ovvenus L. 1. Epigr. 51. eleganter expressit, dum canit:

*Subditus in legem peccat Regemque Deumque;  
Rex peccat soli, Rex quia nempe, DEO.*

Et sane, cum imperantes sint homines, non potest non fieri, quin diuinis legibus subiiciantur, & cum, secundum Plutarchum, idem sit, DEVUM sequi & parere rationi, atque solus DEVIS de praceptis iuris naturæ dispensare posuit, hinc nec naturæ vel rectæ rationis legibus principem solutum esse, dubio caret. Ex harum iam dictatis cum profluat, pacta fidemque datam seruare, sua hinc sponte sequitur, principem ipsum contractibus & fide data non minus obligari, quam alius quilibet, etiam priuatus, suis promissis tenetur. *Fundamentum iustitiae est fides, fides vero dictorum conuentorunque constantia & veritas,* Cicero scribit: *De offic. lib. 1.* Pertinet huc etiam illa heroica vox Philippi Landgrauii Hasix, citante Warem ab Erenberg. *de reg. fuis fid. cap. 5.* Man soll einen Fürsten erkennen bey Haltung beschrener Zusage, reiner Straßen und guter Wahrheit. Et altera illa, quam Imp. Carolo V. Zenocarus in eius vita & Francisco I. Galliarum Regi Bodinus de Rep. V. 6. tribuit: *Etiam si fides toto terrarum orbe*

orbe exularet; tamen Imperatori (Regi) tenendam esse, qui ea sola, & nullo metu cogi adstringique posse. His præmissis, quaro, si princeps, qui a nullo alio nisi DEO dependet, seueriores, aut iniquiores leges ferat: aut etiam ciues variis modis affligat & vim iniustam iisdem inferat, an huic iure resitti possit? Sane, quod ad prius membrum attinet, cum subditu suam voluntatem voluntati imperantium circa negotia publica subiecerint, & obsequium eiusdem mandatis promiserint, neque etiam de iis, quæ feruntur, legibus recte iudicare valeant, consultus & re societatis erit, si iniquiores has leges patienter ferant, memores illius, quod Tacitus *Ann. III.* tradit: *Principi summam rerum iudicium Diu dederunt, subditis obsequii gloria relicta est. Et Iudicis supremi in statu cœnili sententia valer apud subditos, vias pronunciauerit secus, quam rei natura postulauerit.* Cumberl. de *ll. nat.* p. 52. Id namque ad tranquillitatem securitatemque publicam quam maxime est necessarium. Quid enim, quofo, fieret, si ciuibus, libertatis vplurimum studioſis, liceret de iustitia constitutionum principaliū disputare? quæ hinc turbæ essent oritur? Illud saltem monendi sunt qui aliis parent, vt caueant, ne, si iniqua ipsis imperentur, diuini iuris oblii ad turpia quævis & impia patranda abripi se patiantur. Admodum enim hic fallitur Hobbesius, arbitratus, nihil a Rege, quod factu improbum sit, præcipi posse, quia Principis mandatum qualescumque subditorum actus iustificet, solidè ob id reprehensus a Scharrockio de *Off. sec. ius nat. C. IV. n. 9. p. m. 186. sgg.* Namque DEO potius obedientiam quam hominibus, & qui iniqua superiorum iussa spernit, aut iniustis præceptis non paret, haud inobediens est, nec peccat. Grot. de *I. B. & P. L. II. C. XXVI. §. 3.* Imo in ipsos subditos culpa redundat, si in crimen consenserint, aut quid fecerint summae potestatis imperio, quod facere sine facinore non poterant. *Idem. L. II.*

**L. II. C. XXI. §. I. n. 1.** Ad alterum quæstionis huius membrum respondeatur, distinguendo primum, num iniquitas illa Regis vniuersam Rempùblicam lèdat, & ad plenariam eiusdem euercionem tendat; an vero aliqua tantum societatis membra per eam vexentur, ut tamen cæterorum res saluæ permaneant; Si hoc, negamus plane subditu quicquam audendi ius esse, quo reipublicæ tranquillitas turbetur, aut damnum exinde toti societati immineat. Nam, quemadmodum ob publicum delictum ad necem dare se possunt & debent, qui delicti autores non fuerunt, idque publici saltem boni causa, veluti id demonstrat Puffendorff. de I. N. & G. L. VIII. C. II. §. 5. & rationibus firmat Grot. de I. B. & P. L. I. C. IV. §. 4. sane multo adhuc magis iniuriæ a Rege quibusdam illatæ, patienter erunt ferendæ, ne ob vnius membra incomoda, totum reipublicæ corpus turbis implicetur, vel alia ratione affligatur, quod quidem facile contingere, si ob ea, quæ priuati quidam iniuste patiuntur, Principi refragari licet. Optime Cicero de off. L. I. c. 10. contra officium esse inquit, *maius damnum minori anteponere*. Eleganter hoc expressum legimus ab Imperatore Justiniano in l. vn. §. 14. C. de cad. toll. vbi ita: *quod communiter omnibus prodest, hoc priuata nostræ utilitati præferendum esse censemus*, & Innoc. II. in c. 3 X. de postul. prælat itidem speciali utilitati communem, & minori maiorem præfert. Huc etiam respicit Paulus, dum Rom. VIII. inculcat, ne quis potestati oblistat, cum ordinatio sit ab ipso DEO constituta. Itaque animaduersio in peccata Principium soli DEO reseruatur, cui, quæ patiuntur mala subditi, commendent. *Quod si vero talis sit calamitas, quæ ad vniuersum populum simul spectat, denuo dispiciendum, attendat ad plenariam subditorum perniciem, num vero saltim ex eo, quod Princeps priuata utilitati prauisque affectibus nimis indulget, tote vniuersitas damnum aliquod*

aliquid sentiat: Ultimo casu vicissim nullum ius populo concedimus, suo principi resistendi, quippe summa potestas independens est, & qui ea gaudent, nemini nisi DEO actionum suarum rationem reddere tenentur, neque populi iudicio submittuntur, summe Rev. D. D. Buddeus *Inst. Theol. Moral.* P. II. C. III. sc̄l. VII. §. VI. vbi & contra Monarchomachos solide atque erudite disputat. Inde, si quando Princeps non DEO & Reipublicæ sed sibi potius & suis libidinibus litans, sanctissimum officium administrat, iniabolabilis nihiloscetus habendus atque tolerandus est, & secundum illud Liuii III. 53, 9. leutum potius, quam gladius hoc casu sumendum. Cerialis apud Tac. H. IV. c. 74. n. 4 in oratione ad Treveros atque Lingonas idem suadet: quomodo sterilitatem, inquiens, aut nimios imbres, aut extera nature mala; ita luxum vel auritiam dominantium tolerate. Docemur hoc pariter in sacris litteris Psalm. LXXXII. 8. vbi qui premuntur vel alios premi vident a Magistratu, aliud nihil molintur, nisi vt DEI opem implorent; verbis: surge, o DEVS! judica terram: tu enim possessionem habes iudiciorum in omnibus gentibus. conf. quæ egregie in hunc psalmum commentatur Boeclerus, Diff. Acad. XV. p. m 568. Grauisimi huius autoris hanc in rem verba quæ habentur. Diff. ac. IV. p. 153. quæ agit de Auspicio regio, hic legi merentur: Non in tantum sequentia est muneric ipsius veneratio, ut statim condemnari aut impugnari posse, qui indignis muovere moribus virtur. Quæ enim alia promptior ad seditiones via esset? Multa hic sibi DEVS reservat; qui suam ordinacionem, vt cum sacris litteris loquamur, in qualicunque rege, dum modo Rex sit, vult honorari; neque vindictam sibi soli referuant primatis atrectari manibus patitur. Sæpe etiam pessimi principes pro poena ab ipso DEO subditis dantur. Levit. XXVI. Esai. X. Osee XIII. n. Ezech. VII. Iob. XXXIV. 30. Itaque ad preces potius & lachrymas vitæque emendationem fugiendum, quam illis

insultandum. Hinc iuste occisor Saulis puniebatur 2. Sam. I. 15. & IV. 7. sqq. vid. Carpzov. ad L. Reg. Germ. c. 14. sect. II. add. Grot. L. I. C. III. §. 16. Aliud tamen statuendum, si princeps adeo degeneret, ut non amplius salutem suorum, sed omnimodam illorum perniciem querat, vid. l. 3. de off. pref. vigil. l. viii. §. 14. C. de cad. toll. Nou. 8. pr. & C. II. N. 149. & libertatis exitium potius quam augmentum, contra l. 15. ff. de appellat. l. i. pr. C de off. pref. Axi. N. 78. c. 4. inf. atque loco in columitatis status, interitum eius moliatur, ita ut non tantum innocentes crudelissime diuexet, sed cuncta plane con turbet, neque amplius Princeps aut Rex, sed ob hostilem, quem erga tempopl. induit declaravitque animum, Tyrannus vocari mereatur: ita enim si nec consiliorum prudentia, nec libelli supplices, nec querelæ & lachrymæ priuatorum, Tyranni animum flectere queant, omnino ut tali resistatur, tanquam hosti, par est. Etenim talis hoc modo fidem, quod fundamentum est reipubl. violat; quippe hanc conditionem iniuisse consentur imperantes, ut quæ communiter prosunt, curæ habeant, & in societatem homines coiuerunt, non ut perderentur, sed ut conser vantur: hic finis ubi prouersus dificit, & vinculum illud, quo subditū obligantur, cessat, nulla eaudit superioris potestas: utri enim a fine, inquit Cumberl. de legibus nat. c. IX. §. 6. confiliatur imperium; ita ab eodem naturaliter & neceffario limitatur. Omne enim medium fini suo exable accommodandum est, ut nec ab eo deficiat, nec eum excedat. Ideoque manifestum est, quod, in ordine ad honorem DEI gentinimque felicitatem, non potest fundari imperium, quod ius habet hac exercendi. Hinc forte Seneca mouetur, ut c. 4. de Clem. animadverat: Principum facit bellum esse, conf. Gail. I. Obs. 14. n. 6. & 2. Obs. 88. n. 2. & 9. in primis Lips. polit. VI. s. Ea, quæ diximus, cum vera sint de eo, qui absolute régnat, & superiorem, nisi DEVN, non agnoscit, multo magis de illo dici poterunt, qui ita Reipubl. præst, ut tamen popu-

pōpulo vel statibus , vigore pactorum conuentorum com-  
municata & reseruata sit quædam potestas ; quale quid  
videre est in Imperio nostro Romano Germanico . Vnde  
non possum accedere illis , qui depositionem Wenceslai  
plane improbatum eunt , ignavia quippe , & voluptates  
quibus hic Imperator totus quantus deditus erat , iuxta-  
cum crudelitatem , cause fuere , imperii plenariam ruinam  
minitantes , quibus impulsu Proceres recte omnino fece-  
runt , dum eundem imperiali dignitate priuarent . conf.  
Excell . Dn . Struui Præceptoris mei venerandi *Syntagma*  
*Iur . publ . Diff . XIII . § . XV .* De moribus autem Wenceslai  
quibus depositionem promeruit , vid . Chron . belg . ma-  
gnum p . 326 . Paucis hic quædam subiecte iubet , de iis ,  
qua in aliis societatibus in aequalibus minoribus , Diuini  
Numinis dispositioni reseruata censemur . Nam quem-  
admodum illa coniunctio , qua est inter patrem & filium ,  
domainum & seruum , ex illa parte imperium , ex hac ob-  
sequium importat , atque adeo ad mandata illorum ex-  
plenda , non modo ex fine harum societatum tenemur ,  
Grot . de I . B . & P . L . II . c . V . § . 24 . sed & ipsa Numinis  
voluntas hæc disertis verbis a nobis exigit ; Mal . I . 6 . illi  
vero qui tali potestate gaudent , eadem haud raro non  
recte vtruntur , accidit inde , vt animus anceps hæreat ,  
nesciatque quid agendum prætermittendum sit , cum ex  
una parte dubitet , an verbo diuino atque iustitia iusta  
superiorum conueniant , nec ne ; ex altera parte autorita-  
tem diuinitus institutam intueatur . Nam illud quidem  
certum est , quod mala conscientia agant , qui seruitia sua  
ita præstant , vt malitia dominorum atque sceleribus quasi  
instrumenta inferuant , neque a poena absoluuntur ; in-  
terior tamen , quia Apostolus iubet , vt duris etiam dominis  
obtemperent serui I . Petr . II . 18 . Grot . L . I . C . IV . § . IV .  
v . 6 . si dubium existat iustumne sit , quod a domino im-  
peratur , nec ne , tutius erit iusta sequi , cum autore Se-

neca, seruus herilis imperii non censor sit, sed minister; Si vero  
 hac ratione peccetur, ab ipso domino DEVS rationem  
 exiget: hunc iniquitatum vindicem, si forte duriora ser-  
 vis imponantur, neque humanis auxiliis inde se expedire  
 possint, implorent, eidemque sua committant. Arctius  
 adhuc vinculum inter parentes intercedit & liberos, illi  
 quippe his plane *as iactōn. li. dōm.* vt Arist. ait *ad Nicom.*  
*L. VIII. 12.* imperant, & tamquam corporis sui partibus,  
 non tantum de necessariis, sed de iis etiam, quae ad vi-  
 tam commodius, suavius, honestiusve transigendam  
 pertinent, quam uberrime prospiciunt, vnde vicissim hi  
 pietatem parentibus debitam gratitudine, obedientia at-  
 que reverentia omnibus modis testari debent. Neutquam  
 tamen adeo tenentur liberi, vt illis parentum dictis au-  
 dientes sint, quae pugnant cum voluntate & honore DEI,  
 cum dignitate & utilitate publica ac legibus ciuilibus: potior  
 enim est Reipubl. quam familia ratio. Porro excipi solent,  
 quae incrementum familie impediunt, & tandem quæcum-  
 que legibus iustitia & honesti contrariantur; quoniam  
 ad turpia & iniusta nulla datur obligatio, & qui turpe ali-  
 quid & flagitiosum filio imperat, in eo pater non est, ait Pontan-  
 us *L. de obed.* Hoc ipso autem minime probamus illud  
*Gellii N. A. L. II. c. 7.* Aut recte imperat pater, aut perperam.  
 Si recte imperat; non quia imperat parentum; sed quoniam id  
 fieri jus est, faciendum est. Sin perperam, nequaquam scilicet fa-  
 ciendum quod fieri non oportet. Deinde ita concludebant: nun-  
 quam est igitur patri parentum que imperat. Nam non tan-  
 tum tenentur liberi honesta ideo agere, quoniam norunt  
 per se honesta esse: aut turpia atque indecora fugere, quia  
 in se talia sunt; sed etiam quod vel præcipiuntur, vel ve-  
 tantur a parentibus. Diserta verba sunt *Eph. VI. 1, 2. Co-*  
*loff. III. 20.* Itaque si incertum aliquando fuerit, res a pa-  
 rentibus imperata, sitne honesta an turpis, utilis an noxia,  
 manet tamen semper quam certissimum præceptum hoc de  
 obse.

obsequio parentibus præstanto, quod proinde liberi in casu  
dubio tuto sequuntur, tum ob voluntatem diuinam, tum  
quod parentes præsumantur non nisi bene velle suis, ma-  
jor hinc ipsis experientia & prudentia tribuenda, cum na-  
tura ipsa hos liberis tanquam duces retoresque præ-  
fecit. Vnde Tiberius apud Tacitum *Annal.* III. c. 17. ple-  
nissima æquitatis sententia adolescentem (Pisonis filium)  
a crimine civilis belli purgavit: patris quippe jussa nec potuisse  
derelictare. Auctoritas parentum ab ipso DEO est. οὐ γάρ  
τικαὶ τοῖς πατέρεσσιν εἰσὶν ἀπόδεξεις. Ephes. III. 15.  
Hujus ergo coelestis patris parentes nostri sunt vicarii, qui,  
si officio sibi demandato prout decet non fungantur, sat  
gravem certissimumque judicem olim experientur omni-  
scium DEVUM: interim liberorum est, non temere jussa,  
parentum negligere, sed in his ipsis sincera atque humili  
obedientia patrem cœlorum venerari, cuius misericordiae  
committant, quæ punit a parentibus non jure imperari.  
add. Grot. de J. B. & P. L. II. C. XXVI. S. 4 Possem hic  
quædam inserere de provocatione delinquentium ad divi-  
num tribunal, & de citatione, ut loqui amant, ad vallem  
Iosaphat; sed cum hoc thema jam toties ab aliis erudite  
satis fuerit pertractatum, ad illud filium non porrigo, dis-  
sertationis enim limites, lectorisque benevoli patientia id  
michi vix permittunt.

## §. XXVIII.

Aliquando etiam in Republ. quædam inveniuntur,  
quæ quidem in se spectata nullatenus adprobanda sunt,  
propter omnimodam tamen legis conticentiam, cum nihil  
de iisdem in ullam partem constitutum reperiatur, talia  
impune patrare licet, eatenus saltim, ut agens non impe-  
diatur, & absque metu poenæ in his terris illa perpetrare  
possit, non vero ac si omnino recta essent, atque pietati  
officiorumque regulis convenient, adeoque divinæ  
animadversioni eximerentur. Peccata enim, si quæ talia  
sunt,

Sunt, DEVS nunquam permittit, nec impunita relinquit,  
licet non exemplo vindicet. Igitur quæ huius generis  
sunt, jure meritoque inter DEO commissa reponuntur. Huc  
spediat occisio seruorum apud Germanos veteres, pariter  
atque Romanos, olim impunita. De illis Tacitus de Germ.  
morib. C. XXV. 3. hæc prodit: *Verberare seruum, ac vincu-*  
*lis ac opere coercere raram. Occidere solent, non disciplina &*  
*fueritate, sed impetu & ira, ut inimicum, nisi quod impune.*  
Idem Romanis in usu fuisse testatur l. i. §. 1. ff. de his qui  
sui vel. al. iur. sunt vbi Caius ait; *Nam apud omnes pereque*  
*gentes animadvertere possumus, dominis in servos vite necisque*  
*potestatem fuisse.* Addit deinde, fines huic potestati positos  
ex lege romana, in solo scilicet romano. Grot. de J. B. &  
P. L. III. C. VII. §. 3. Licet enim per leges antiquiores ser-  
vi pro nullis habebantur l. i. §. 2. unde cogn. l. 32. ff. de R. J.  
imo peculibus & mortuis comparabantur, l. 2. §. 2. ff. ad  
L. Aquil. & l. 59 in fin. de cond. & demonstr. atque in illorum  
cædem nihil statutum inveniebatur; tamen nemo, vt qui-  
dem arbitror, est, qui hinc concludet. fas fuisse, seruos,  
qui æque homines sunt ac liberi, ita pro libitu trucidare.  
Potius ipsa natura jura, juxta cum sacris litteris, nullum  
nobis dubium relinquent, quin DEVS, innoxii effusi san-  
guinis acerrimus yindex, gravissimas crudelitatis hujus  
penas olim exacturus sit. Vid. Bernegger. quest. Atscell.  
in Tat. Germ. CXXXXV. Ejusdem fere communis est, quod  
Halicarnass. l. 2. refert; licuisse quondam Romanis libe-  
ros suos ter vendere. Neque enim sine summa necessitate li-  
cer liberis plane ut servis uti; cum ad deus familia interficit, ne  
ii, tanquam homines ingenui, liberalius tractentur, quippe quos  
velut partem aliquam ad nos percire novimus & per quos de-  
eus domus nostra propagatum iri speramus. verba sunt Dn.  
Oesterlini in diff. de limitibus pietatis liberorum erga parentes.  
Nec patria potestas, quæ ex fine extimanda venit, quem  
DEVS eidem præposuit, tale quicquam involuit. Dum  
paren-

parentibus cura educandorum liberorum injungitur, eo ipso a natura injungitur iisdem, ut imperium utique in liberos exerceant, quantum ad istum finem sufficit. Puffend. de J. N. & G. L. VII. C. II. §. 4. Hinc etiam factum, ut quod olim ob legis conscientiam licuit, l. i. C. de patr. qui fil. suos disr. fuerit sublatum. Ab hac vero constitutione solus extremæ necessitatis casus exemptus censeri debet. Grot. de J. B. & P. L. II. C. V. §. 5. conf. maxime Rev. Dn. D. Buddei Inst. Theol. Mor. p. II. C. III. Sect. VI. §. 29. sqq. Stryck. de For. Consc. C. II. n. 61. Illam vero injuriam, qua olim parentes proprios filios, vendendo eosdem, affecerunt, deficiente vindice humano, ipse DEVS vindicabit. Illud omne, enim, ceu sibi commissum, is ulciscitur, quod pœnam meruit, ob quasdam vero causas in humano foro eidem subtractum fuit. Exinde sequitur, cum ea illa, quæ hodiendum inter Christianos deprehendimus, sanctitati religiosis, quam profiterintur, repugnantia, & quæ sine legumi reprehensione admittuntur, diuine vindictæ reservari. Longum quidem illorum catalogum contexere haud foret difficile, si id ipsum instituti ratio permetteret. Interim benevolum lectorum ad illos remitto, qui talia jamjam studiose consignarunt, quales sunt qui pia, ut vocant, desideria ediderunt, Arndius, Spenerius alii, in primis Gerberi ille Liber, cui titulus Unerfamte Sünden der Welt / hic facit, ubi plura thesin nostram illustrantia legi merentur.

## §. XXIX.

Facit quoque presentis vite statis, ut multæ aequalia, sine animadversione relinquantur, quippe quæ adeo frequentes occurunt, ut nulli judices vel tribunalia iisdem cognoscendis sufficerent, flagitia enim & facinora sine modo sunt, ut inquit Lepidus apud Tac. III. 50. 2. & iuxta Tucydidis illud L. 3. omnes nati sumus peccare & labi, qua privatim, qua publice: aut si Plinius verbis in panegyr. IV. §. id audire

audire malumus, abhuc nemo exitit, cuius virtutes nullo vi-  
 tiorum confusio ledentur. Cum quo consentit Seneca de-  
 ira. L. III. Constat sapientissimos quoque viros multa delinqueret;  
 neminem esse tam circumspetum, cui non diligentia aliquando  
 sibi ipsi excidat; neminem tam maturum, cujus non gravitatem  
 in aliquid servidus factum casus impingat; neminem tam timi-  
 dum offendarum, qui non in illos, dum vitat, incidat. Et L. II.  
 ibid. Inter cetera mortalitatis incommoda, & hoc est, caligo men-  
 titum; nec tantum necessitas errandi, sed errorum amor. Acce-  
 dent prater SS. sanctorum patrum testimonia non pauca,  
 qui univerlos ac sanctissimos etiam quosque peccatorum  
 diserte insimulant. Cyprian. sermone de Eleemosyn. Quisquis  
 ait, se inculpatum dixerit, aut superbus aut fultus est. Inpri-  
 mis vero serm. de jejun. Fuerunt & ante Christum viri insignes,  
 propheta ac sacerdotes, sed in peccatis concepi & nati, nec ori-  
 ginali, nec personali caruere delicto, & inventa est in omnibus  
 vel ignorantia, vel insufficientia, in quibus errore peccaverunt &  
 egerunt misericordia DEI, per quam edocti & instituti gratias  
 egerunt DEO, & ad plenitudinem justitiae multum sibi deesse con-  
 fessi sunt, & sperantes in DEO, nullam sibi soliditatem attri-  
 buere presumperunt. Cum ergo penitus a peccato liberum  
 esse, supra humanam naturam sit, Gregor. Nazianzen.  
 Orat 2. in Iatian, facile hinc consequitur, quod si quis  
 omnia malefacta punire vellet, solitudinem vastitatemque  
 induceret, ac genus humanum penitus extingueret. Ita-  
 que judices humani quibusdam impunitatem concedere  
 solent, ita tamen ut eo ipso divini Numinis iudicio nihil  
 prajudicent, sed justissimæ ejusdem voluntati hæc talia  
 plane relinquant. Quilibet autem videt, sermonem hic  
 esse de iis solu n delictis, quæ per infirmitatem humanam  
 evitari vix ac ne vix quidem possunt, sive de minutissi-  
 mis istis lapsibus, qui ex corruptione mortalium resultant,  
 quibus ipsi adeo regeniti præter suam voluntatem inviti  
 subjacent, atque ob hanc inevitabilem fragilitatem ve-  
 niam

niam facile impetrant. Huc illud Bernardi: *Ubi necessitas  
urget; excusabilis dispensatio est; Ubi utilitas provocat, dispensa-  
tio laudabilis est; utilitas dico communis, non propria. Nam cum  
nihil horum est, plane non fidelis dispensatio, sed crudelis dissipatio  
est.* Ili igitur, qui ne ullum quidem viri boni pilum  
habent, sed toti ex fraude, fallaciis, mendaciis sunt com-  
positi, quo se tueantur hic non invenient: nihil enim ju-  
vat, malitia impotentiam & virium defectum, nescio quem,  
pratexere, si Christiano homine minus dignam vitam vi-  
vas, corruptaque natura stimulis pro lubitu indulgeas;  
hęc enim non infirmitas, sed malitia est, cui adeo non  
parcent judices, ut potius hac fraude semel detecta, incensi  
severiores statuere poenas assoleant. Allegari sapius solet  
in hisce casibus dicterum, nostris admodum usitatum:  
Wir sind alle arme Sünder; sed audi quæso, quid ad hęc  
Autor (supra a nobis allegatus,) der widerlegten Sprüch-  
wörter p. 113. respondeat: Freylich sind wir alle arme  
Sünder / das wissen wir alle wohl / wenn sich aber ein  
Schelm / ein Dieb / oder ein anderer Schandvogel mit  
einem ehrlichen Mann / so in einem öffentlichen Ehren-  
Ampt sitzt / und über ihn zu gebieten hat / vergleichen  
will / solches schicket sich im gringsten nicht / und wäre  
einem nicht gar unbekannten Menschen einstens die Ent-  
schuldigung gar sübel bekommen / indem der Richter  
sagte; Ob denn der Verbrecher meine / daß die Obrigkeit  
dergleichen böse Stück auch auf sich ersitzen habe/  
und gieng kaum ab / daß er über voriges ein mehreres  
hätte erleyden müssen &c. Legi hic merentur illa Vinc.  
Turtureti verba, nostram sententiam haud parum con-  
firmantia: Ita enim ille, in parallel. Eth. & Jurid. p. 139. Si quis  
parum sane mentis consulo sibi os luto collineret, ceno deturparee,  
& volens & libens alia ridicula efficeret, bujusne misericordia te  
teneret? male ribi sit, dices, homo ineptissime, qui malum tibi  
accersis. Ita homines universos licet affari, vel vitiis irretitas,

vel hisce miseriis (quibus volentes sese obtulerant) afflictos  
 male vobis sit, perverissima capita, qui luctus, miseria, infortunia  
 viris ultra accersit. Liber vestras deridere miseriis, quibus luctus,  
 dolor, angor est pro dote: dum vobis est pro animo malas artes con-  
 fectari, viamque insistere, que ad innumerabiles ducit erumias. Nam  
 quos per imprudentiam, aut per verstantem saeculum sibi maiorum  
 autores cognoscimus excitisse, reprehendimus, culparus, odio habe-  
 mus, ex mente Polyb. L. b. Hec in primis sibi dicta putent, qui  
 non legibus, non praeceptis sed se veritate saltim penarum,  
 flagellis & fustibus a malis revocari amant, neque aliter  
 sapiunt, nec ad bonam mentem redeunt, vel in officio con-  
 tinentur, quam si metu fustium scapulae iisdem priuantur,  
 vel suppliciorum expectatione cor trepidet.

Maxime sane laudanda est industria judicis, quam  
 impendit, ut in perversos subditorum mores animadverterat,  
 & quoad ejus fieri potest, caveat, ne unquam hominum  
 nequitia infirmitatis velo recta, rempublicam variis vicio-  
 rum generibus contaminet. Attamen hoc ipsum, utut  
 per se egregium, ubi reipubl. statui minus opportunum,  
 visum fuerit, aliquando haud observant peritissimi etiam  
 rerum publ. moderatores, sed convenientes fortunæ sen-  
 tentias dicunt, cum Attabazo illo apud Curt. L. V. atque  
 adeo ubi necessitas & temporaria conditio id postularat, quæ  
 in sceleris alias statuta sunt, haud exequuntur, & flagitia  
 quedam, non quidem approbando, sed connivendo saltim  
 tolerant, si scilicet viderint, coercitionem plus damni inferre  
 Reipubl. atque turbas & seditiones extasi animadvercio-  
 ne metuendas esse, imo ipsam exinde imminere interne-  
 cionem. Grotius de J. R. & p. L. III. c. V. §. 4. rei hujus quæ  
 dam exempla suppeditat, dum tradit, ad minor quædam &  
 frequencia delicta ita connivere capisse jus gentium, sicut leges civiles  
 ad meretricium & improba favona. Et quidem omnia illa vi-  
 tia, quæ publice jamjam ita invaluerunt, ut iisdem tollen-  
 dis

dis leges frusta in remedium adhibeantur, talia sunt, quæ si quis in republ. coercere vellet, hanc secundum prudenter ageret. *Quemadmodum enim ut verbis utar Seneca de benefic. III. 16. 5.* horum delictorum jam evanuit pudor, postquam res latius evagata est: ita ingratos plares efficiet & audacie, si numerare se caperint. Sane talis animadversio seditionis fomes esset. Proinde Tiberius apud Tac. ann. III. 52. 13. cum Romani ad ipsum attulissent, sparsi sumptuariam legem, venitque utensilium pretia angari indies: nec mediocribus remedii possit posse; inter alia & hoc prudenter suaderet: *Omittere potius prævalida & adulta viria, quam hoc adsequi, ut palam fieret, quibus flagitiis impares essent.* Inde corum quippe attrahere, quod non obtinetur. Fœnora improba in hunc censem quoque refert Grot. d. l. Hac vero qualia sint, pater ex ejusdem Autoris I. II. C. XII. §. XXII. ubi docet; leges humanas, quæ concedunt aliquid stipulari pro usu pecuniae aut rei alterius, si quidem vere stant intra compensationem ejus quod abest, aut abesse potest, non pugnare cum naturali aut divino jure; *sia cum modum excedunt, impunitatem preflare posse, ius dare non posse.* Nempe ex regula Christi Match. VII. hoc ipsum quam rectissime definiri potest: *omne quod vultis, ait inibi salvator, ut faciant vobis homines, vos etiam ipsis facite: eum ergo est, ut in luci, quod ex nostra pecunia accipiunt, qui ea uenuntur, participationem nos admittant.* Cum & ipsi ad eam admitti vellent, si nos ex illorum pecunia lucrum percipiremus: veluti loquitur VIR summe Rev. D. D. Buddeus, Inst. Theol. Monach. p. II. C. III. Seft. V. §. XXVII. in not. Similiter charitas exigit, ne usuris alteri damnum inferatur; quod si quantitas usurarum lege civili determinata fuerit, peccant qui plus aut accipiunt, aut exigunt, peccant tamen etiam qui non plus, immo minus accipiunt, si quidem & hoc illi, a quo usuræ exiguntur, damnum adferat. *Ibid. §. XXIX.* Hos limites quæcunque transgrediuntur usuræ, improba fœnora esse, ex dictis solide evincitur.

Interim vero, ut Grotius recte dixit, per conniventiam ubique fere excessus hac in parte tolerantur, ne forte, si perversis his moribus nimio rigore judices se se opponent, hoc inde oriatur malum, ut, dum minus lucrum quam quidem percipere sinistra consuetudine introduetur est, nanciscantur homines opum nimis cupidi, pecuniam potius otiosam reinerent, neque obseratis atque pauperibus mutuam opem ferrent, quo ipso sane divellenda magis quam firmandæ societatis civilis occasio præbererur. Interim in oculis Dei gravissimum hoc crimen reputatur; conf. Psalm. XV. 1.5. Proverb. XXVIII. 8. Ezech. XVIII. 7. seqq. neque dubium, quin oculus citius divinam nemesis improbi fecundatores sint experti, licet ob nimiam usurarum frequentiam pœnis humanis haud coercentur aut supprimi queant, totque detestabilibus illicitarum usurarum modis legibus & sanctionibus obex ponî non possit, veluti conqueruntur. Status in Rec. Imp. Francof. de Ann. 1577. tit. 17. Von roucherlichen Contrachten: wie bis anher im heiligen Reich manigfaltige rucherliche Contract, die nicht allein ungemein, sondern auch unchristlich wider Gott und recht geubet worden sind und täglich geubet werden. ic. vid. Carpzov. p. II. quest. XCII. n. 14 seqq. Notari hic quoque merentur Lutheri verba, quibus in hoc hominum genus invehitur, in comment. Von Rauff. Handlung und Wucher/ ubi inter alia ita: Es sind nicht Leuts sondern Weblsse und unverumfittige Thiere die nicht glauben das ein Gott sey. Sui proinde officii recte reputavit Justinianus in Nov. 32 33. 34. usuras ad aquoirem formam reducere. Laude quoque digni hoc in easu sunt prisci Germani, quibus foenus agitare ignotum fuit, idque apud ipsos magis servabatur, quam si vetitum fuisset, teste Tac. Germ. XXVI. 6. Ad meretricium quoque leges civiles connovere, ait Grotius l.c. quod quidem non tantum verum est de Ethnicorum Imperatorum temporibus, sed etiam Christianorum atque scortationes & lupanaria, fuerunt

fuerunt permissa , vid. l. 27 ff. de hered. petit. l. 13. §. 2. ff. ad l.  
Jul. de Adult. l. 29. C cod. Wesenbec. tit. de Concubin n. ult. Co-  
varuv. de Sponsal. P. I. C. 4. n. 10. ubi dicit; Ecclesiam ac to-  
tius orbis Catholici Principes , lupanaria permittere , non  
quod illud peccatum approbent , sed ut adulteria , incestus  
atque alia luxuriæ crimina compescant . Unde & Arnold.  
Clapmar. de Arcan. Rerumpubl. L. IV, C 19. existimat , in bene  
constituta republ. ad stupra honestissimarum foeminarum  
avertenda , tolerari posse lupanaria. add. Carpz. P. II. qu.  
70. n. 6. segg. Potissimum rationem allegant , prudentia esse ,  
ex duabus malis minimum eligere . Verum enim vero , quæ  
cunque demum illa sint , quæ pro impia atque scelestissima  
lenociniæ functione afferuntur , non tamen facere possunt ,  
ut ob ea putemus , non esse pestiferum hoc noxiunque  
Reipubl. malum , secundum Nov. 14. Non dicam naturæ  
societatis hominum talia plane non congruere , id quod  
probat Puffendorff. de J. N. & G. L. VI. C. I. §. 5. illud saltim  
observo , quod , si vagæ libidines in republ. tolerantur , in  
maxima hoc ipso eadem conjiciatur discrimina . Unum  
hanc in rem hic addam argumentum . Nempe omnes tur-  
ba seditionesque plerumque ab iis metuendæ atque expe-  
ctandæ sunt , qui pueritiam adolescentiamque luxuriose  
transferre : nullum enim animal , est quod rectorem mo-  
rosius ferat , quam prave educatus : constat præterea , nisi  
singulis civibus officium ac verecundia sua confiterit , par-  
tarum rerum cœlo , etiam æquatum , cumulum , sedem stabi-  
lem non habere . Jam autem , quis negat , pudorem o-  
mnem exulare , ubi libera cuique scortandi occasio est ?  
Matrimonium , quod seminarium est Reipubl. & fons pe-  
rennis civium , hinc plane negligitur ; sua enim secum in-  
commoda trahit , quæ ut evitentur , multi inveniuntur .  
qui contenti scorto , quod primum fors in lupanari tulerit ,  
execrandas libidines exercere malunt , quam legitimo co-  
habitare conjugi . Ita sane perditissimum illud hominum  
genus

genus fovetur, atque indices magis succrescunt, quibus, veluti præclare Sallustius in *Ora. I. ad Cesarem*, scribit, *bis die ventrem onerare, nullam noctem sine serto quiescere mos est, qui, ubi animum, quem dominari decebat, servitio oppræsere, nequam eo poslea hebeti atque elando pro exercitio uti volunt, nam imprudentis pleraque & se precipitant.* Quippe libido tota quanta est dedita corporis arbitrio hebetat caligine sensus; mollis est, venerea, feminea, adigin homines veluti pecora, quæ natura prona, & ventri obedientia fixit; sensuum illecebris servire. An vero respubl. in qua magnus horum talium numerus est, bene constituta dici mereatur, optime iudicaverint, qui publici boni naturam penitus paulo habent cognitam. Nulla certe est lapmarii illa ratio: nam si modo indolem cordis humani serio scrutamur, facile apparebit, non tale esse hoc vitium, quod hominem, postquam cum objecto sensus suos delectante semel iterumque sese univit, sedato belluino isto stimulo, jam quiescere finat, desiderium quippe hominis infinitum est, neque vano, inconstante, labiliisque objecto exsatiari potest; Conf. maxime Rev. D. D. Buddeus *Instit. Theol. Mon. P. I. C. I. Sect. IV. §. XXVI. sgg.* Potius, ubi semel pudoris ac modestiarum repugna perfringere quis non dubitavit, experietur, turpisstimas has flammulas ipso libidinis exercitio in tantum augeri, ut tandem ne ab honefissimorum etiam feminarum quidem pudicitiae violatione sibi temperare possit. Et quofo, noane prudentius agit, securitatique melius consultit, qui regni pomaria diligenter custodit, quam qui his neglectis liberum statim hosti ad ipsos muros concedit aditum? De Monarchis Ægyptiorum testatur Herodotus *L. II. 177.* & Diodor. *p. 69.* lege coegisse cives cunctos, quotannis apud ipsos profiteri, quod vita genus, & quomodo colerent. Si autem hoc intermississet quispiam, aut non bona frugis homo fuisset inventus, capitaliter in eum advertebatur. Sane Oria

si tollas, periere cupidinis arcus, & quicunque hoc ipsum imitatur respubl. optime & castitati & moribus ci-  
 vium prospicit, neque ad turpia remedia quibus adulteria, incestus & alia luxuriæ crimina compescuntur, confu-  
 gere necessum habebit. Aliquando hoc fieri non posse,  
 ajunt; *bei in questione est, an ergo Deus major non est diabolo?*  
*fidelibus omnia possibilia sunt per fidem.* *Marc. IX. 23.* ita recte  
 Dr. Stryck. *de jure Lic. C. III. n. 62.* Lenocinium jam  
 suo tempore fieri prohibuit, & factum punivit Justinianus, in *Nov. 14.* Interim tamen non eo inficias, sepius  
 etiam tacite tantum nefas tolerari, & quibusdam in locis  
 pudorem hujus, multitudine peccantium plane esse sub-  
 latum, licet fœda res sit, sinistra atque detestabilis & a  
 gravissimis omnis ævi viris merito damnata. Imo salva-  
 conscientia nunquam hic connivere potest judex, nisi in  
 casu ubi criminis coercitio plenariam reipubl. ruinam post  
 se traheret, quod, an tam facile existere queat, valde  
 ambigo. Conf. Dr. Stryck. *de jur. Lic. C. III. n. 94. sqq. & C. V.*  
*n. II.* Dn. Brückner. *Diff. de eo quod justum est in foro ext. & int.*  
*C. II. §. 4.* Neque juvabit, ex *Can. I. Diff. XIII.* periculi  
 necessitatem fingere, ubi DEUS ipse administrata iustitiae  
 rationem exigit. Neque ad toleranda lupanaria induce-  
 re quemque debent pontificum quorundam statuta, aut  
 perversi aliorum populorum mores; *multissimum quippe*  
 illud, existimare omnia iusta esse, que scita sunt in populorum in-  
 stitutis aut legibus. Est enim unum jus, quo devincta est hominum  
 societas, *& quod lex constituit una, que lex est recta mitio impe-  
 randi atque prohibendi, quam qui ignorat, & est injusius, sive est scrip-  
 pra uspiam, sive nasquam.* Cicero. *de Leg. L. I.* Nos Germani  
 sequamur majores nostros, apud quos, teste Tac. *Germ.*  
*XIX. 3.* publicata pudicitia nulla venia erat; non forma, non etate  
 non opibus maritum invenerit. *Nemo illic virtus rident, nec corrum-  
 pere & corrompi, seculum vocatur.* Ultima tamen haec verba  
 non ita crude accipienda, sed ita potissimum, ut ad libidi-  
 nis

nis odium referantur; nam utique & corrumpere & corrumphi, seculum est, ubi diem noctemque porare nulli probrum. Quod de iisdem testatur idem autor C. XXII. 3. In hoc vero parentum vestigia sedulo premuntur a posteris, nam in hunc usque diem genti teutonicae ebrietatis vitium ita communè est, ut nec notabile quidem aut fœdum a plurimis judicetur. Imo eo usq; invalvit, ut pro insanabili plane morbo jam habitum fuerit a Carolo V. Hic enim, cum in conventu Ratisbonensi generosa essent vina, multiq; Germani ex compotationibus assiduis extinguerentur, & Hispani ipsi sèpius suaderent, ut huic malo pœna quadam obviamaretur: Quid faciam? respondit; doleo stultitiam meorum Germanorum, sed tam facile illud obtinuero, ac si vobis Hispanis manus constringere vellem, ne furentur. Chytr. p. 3. Chron. Saxon. L. XIX. p. 203. In Orat. funeb. Caroli V. Brunnenmann in Proc. Inqu. C. V. n. 8. Admiratio dignum ait, quomodo Magistratus rem tam necessariam neglexerint, ut hodie crupula sit impunita. Adeoque hec sola impunitas tot seculis continuata, justa causa esse potest concatenatarum calamitatum Germanie. Divina vindicta hoc crimen, quod per se est plus quam bellum, & aliorum scelerum mater facundissima, committimus. Ergo non miremur vindictam divinam grassari in eos, quorum sceleris impunita & clamantia sunt. Conferri utique hic meretur Dissert. Inaug. Dn. Joh. Aug. Köhlau, Hale 1705. Pres. Dn. Bodino habita de jure circa ebrietatem, C. IV. ubi demonstratur, gravissimum ebrietatem delictum esse, atque legibus divinis, naturæ, civilibus, & canonibus damnari. Enim ebrietas, quod Augustini verbis dicam, ex Epist. Sav. Virg. flagitorum omnium mater, culparumque materia, radix crimini, origo vitiorum, turbatio capit, subversio sensus, temperias lingue, procella corporis, naufragium castitatis, amissio temporis, insania voluntaria, ignominiosus languor, turpitudo morum, decus vite, honestatis infamia, anima corruptela. Vix unquam tamen videmus tantum flagitium puniri, nihil sere magis licitum

licitum est, quam ebrietati indulgere, cum tamen ebriosi abominationi sint DEO, despiciantur ab angelis, derideantur ab hominibus, confundantur a dæmonibus. Sunt plura adhuc, quibus seriem hanc peccatorum, quæ per connivitatem tolerari solent, continuare possem, e. g. ludi publici, spectacula, comedix & id genus sexcenta alia, quæ permittuntur quotidie, cum tamen certum sit, Deum iisdem irasci quam vehementissime; sed propositi ratio jubet, ut properem ad finem. De ludis interim videri potest Sum. Rev. D. D. Buddeus, qui in *Inst. Theol. Moral.* P. II. C. III. Sect. V. §. XXV. in not. hanc rem egregie plane pertractat. Add. Dn. Stryck. *de jure lic.* C. II. n. 72. sqq. Unum hic adjicere opera dico pretium: nempe, quamvis adeo foeda sunt, quæ hic recentiimus, tamen ut benefacta plerumque defendi ex eo, quod ita agere mos sit; Essey also der alte Gebräuch. Id vero eleganter plane expressit B. Rhenanus in Commeat. ad Taciti supra citata verba: *Nemo illic vitia rident* &c. quem locum, non possum, quin hic adscribam. *Quanto sanctiores*, inquit, *fuerit nobis ethici!* Nam quotusquisque hodie vitia non ridet, vel quantumvis enormibus flagitiis non prætexit illud, **SIC SÆCULUM EST?** Si quis aliena matrimonia contaminantem aut puellis illudentrem damnet, statim audit **SIC SÆCULUM EST.** Si bonus Vir pessimam istam porandi consuetudinem reprehendat, mox adeſt, qui excusat, quod sic hodie **SÆCULUM EST.** Si quis improbat morem, quo juvenes in militiam temere proficiuntur, ad nullum non scelus patrandum erudiendi, huic mox dicetur, **SIC SÆCULUM EST.** Si quis miretur sacerdotum in parandis prebendis insatiabilitatem, audit, **SIC SÆCULUM EST.** Si quis immodicum mortalium studium in parandis divitiis, questum illicitum, atque conradum iniquitatem detegetur, huic tanquam nescienti allegabitur, **SIC SÆCULUM EST.** In summa nullis non erratis, nequitiis, criminibus, obtendimus **SIC SÆCULUM EST.** Dis similes igitur majoribus nostris, *vitia ridemus, nobisque blandimur,*

*Et corruptentes ac corrupti, decipientes alios ac circumscribentes, culpam in seculum restringimus.* Sequantur ergo seculum quibuscumque illud placet, hoc saltem sciant, firmissimam persistere Numinis sanctionem, & nequaquam bonum aut malum facinus cuiusquam pro nihilo haberi D E O, sed diversa præmia bonos, malosque diversa præmia sequi, & licet in his terris judices fileant, sentient tamen ultrices diras, quæ terrebunt improbos non ardentibus tardis, ut in scenis Orestem, sed conscientia surdis iactibus & imagine facinorum.

## §. XXXI.

Tandem & illa, quæ licet in se considerata vere iusta piaque non sint, tamen legibus humanis, vel secundum praxin judiciorum impunita dimittuntur atque cuiusvis honestati religionique permittuntur, D E O commissis anumerari possunt. Ideo namque hæc talia in medio relinquuntur, ut ipsi nos, quid honestum sit, quid voluntati divina congruat, recteque constitutæ rationi nostræ sit conforme, libere statuamus. Hoc autem judicium non aliunde instruendum, nisi ab ipsis justi æquique, quæ D E U S ipse hominibus indidit, principiis, connataque recti notitia, cuius particulam Creator optimus etiam post lapsum ex ineffabili sua misericordia, reliquam nobis esse voluit. Huc tendit Poëta ille ethnicus dum canit:

*An dubium est habitare DEUM sub peccatore nostro,  
In columque redire animas cæloque venire.*

De naturali hominum honestate verba quoque facit Tacitus Ann. III. 26. *Vetusissimi mortaliū, nulla adhuc mala libidine, sine probro, scelere, eoque sine pena aut coercitionibus agebant; neque præmis opus erat, cum honesta suopè ingenio pereverentur;* Et ubi nihil contra morem cuperent, nihil per metum retabantur. Idem de Romanis testatur Sallust. Catil. 9. i. *Jus bonum.*

bonumque apud eos non legibus magis quam natura valebat. Plin.  
L. 4. ep. 20. Neque enim minus apud nos honestas, quam apud  
alios necessitas valet. Et de Scythis Justinus II. 2. 5. *Justitia  
gentis ingenii culta non legibus.* Ita gentiles in depradicando  
virtutis amore consentiunt. Quemadmodum autem nos  
Christiani ex revelato verbo sumus edociti, speciem faltim  
bonam in actionibus haud sufficere, neque, nisi ex serio  
illo studio sese ad voluntatem Numinis componendi pro-  
fiscantur, & *την πλοτην την ελευθερια θεων in simplicitate &  
sinceritate DEI peragantur, easdem, recte factorum laudem  
mereri;* ita illi virtutem non existimarunt, nisi quæ ex li-  
bero recte agendi proposito fuit enata. Itaque Plinius se-  
cundus, quod se ex officio munificum ac liberalem praefi-  
terat amico, non putat sibi laudis titulos esse quæstos, sed  
culpam vitasse. Non ideo tamen, ait L. III. Ep. II. *eximiam  
gloriam meruisse me, ut ille predicit, credo, sed tamen effugisse  
flagitium: simile huic est illud Venusini:*

Vitari denique culpam  
Non laudem merui.

Oportet siquidem quæ sunt inhonestæ, non quasi illicitæ,  
sed quasi pudenda vitare, jucundum tamen si prohiberi  
publice videoas, quod nunquam tibi ipsi permiseris. Plin.  
L. 5. Ep. 14. Idem significante verba, quæ leguntur in Tr.  
du point d' honneur p. 233. *L'homme intérieur est proprement la  
conscience d'un homme, qui le porte à aimer & à pratiquer la ver-  
tue par le pur zèle, qu'il a pour la droiture, ne se souciant pas, que  
cette vertu demeure cachée & lui suffisant, que sa propre conscience,  
qui le porte au bien, lui serve de témoin.* Hæ sane imaginis  
divina sunt reliquæ, ipsumque adeo Deum autorem agno-  
scunt, unde, si qua haec lance trutinantur, divino eadem  
dijudicari judicio, quis dubitat? sane quæ in hoc foro sta-  
tuuntur, his ipse D E U S tantam autoritatem imperit, ut a  
nullo Regum impunæ contemni queant. Multa etiam hic  
K 2 repre-

reprehenduntur, quæ alias ab animadversione humana libera sunt. Hoc est quod Paulus in A. 144 ff. de R. J. tradid. Non omne quod licet, honestum est. Et Modestinus in l. 42. de Rit. Nupt. semper in conjunctionibus non solum quid licet, considerandum est, sed & quid honestum sit. hoc est, æqui bonique iustis ab optimo Creatore nobis inditis principiis conveniat. Veluti etiam reëte Claudianus Honorium admonet, ut non quod licet, sed quod deceat in omni vita specler publica privataque.

*Non tibi quid licet, sed quid fecisse duebit,  
Occurrat, mentemque domet respectus honesti.*

Videamus quædam exempla causarum, quæ privato huic iudicio relinqueret, mos est. Hoc nomine primum considerari merentur sponsalia sine testibus contracta, quæ quidem jure civili vi obligandi destituuntur, an autem propterea ab iisdem recedere a cuiusvis lubitu penderet? Equidem ut in aliis pactis, per leges civiles & ecclesiasticas certa requisita exiguntur, quæ si observata non fuerint in foro civili, pro validis non habentur. Vide rationem in Nov. 47. pari ratione ob matrimonii dignitatem & publicam honestatem, arbitri atque testes in sponsalibus contrahendis adesse debent, cum quæ clam contrahuntur, non careant turpitudinis, inhonestatis & malitia suspicione, unde Luther Tr. Von Ehe Sachen: Wer die Ehe im Winckel sucht / der ist ein Ehe-Diev und hat sie nicht mit Gott überkommen. Et hæc clandestina, ut vocantur, sponsalia, teste Carpz. J. C. l. 2. def. 32 33. de jure Saxonico sunt ipso jure nulla, licet de jure communii secundum C. 2. X. de Cland. despontat. si personæ contrahentium hoc voluerint publicare, comprobentur, tanquam a principio in Ecclesiæ conspectu contracta. Nos saltem si hic inquirere constitui mus: an, ubi ex causa modo allegata a sponsalibus resilire permisum, salva honestate id fieri queat? ad quod respondeo negando: nam honestum plane non est, ut quis a da ta-

ta fide recedat , cum grave sit hanc fallere *t. r. ff. de const. pecun.* Sponsalia hæc mutuo consensu jam fuere inita, hic, si liber fuerit , perfectam inducit obligationem , de jure naturæ pariter ac divino , sive clam , sive palam fuerit declaratus. Promissa sunt servanda , hæc enim si negligantur, socialitas salva est nequit ; & pacta præcipuum sunt medium ad illa acquirenda, quibus indigemus , sialii sua sponte ea praestare nolint. Si quis autem certus non sit, fidem sibi datam servatum iri , non temere ut pactum ineat, aut promissis fidat , se induci patietur. Nulli hominum fas est, suo sermone pro lubitu uti vel abuti , sed eundem quilibet ita tenetur adhibere , ne alios ullo modo lœdat , gravissime autem lœditur is , cui fides data non servatur : summe Rever. Dn. D. Buddeus *Institut. Theol. Moral. P. II. C. III. Sez. IV. §. X. seqq.* Hinc qui a sponsalibus , clandestinis licet , recedit , non absolvetur, quamvis si externum forum spece<sup>s</sup> , salvam rem habeat , nisi forte aliunde impediatur obligationi huic satisfacere. Idem dicendum de contractu chirographario , ex hoc enim resultat obligatio litterarum , & debitor , qui spe futuræ numerationis pecuniariam se accepisse confessus est , quam tamen non accepit , ex chirographo post biennium efficaciter obligatur. *t. r. Inst. de litterar. Oblig.* Ita enim jus civile finiendis litibus consulere voluit, simulque vigilantiæ civium providit, ne illi negligenter chirographa relinquant apud eos , a quibus nihil accepuntur. Ast improbus ille exactor , qui petit , quod scit sibi non debeti , ne credat sopiendis conscientiæ stimulis hic sufficere autoritatem rei judicatz. Hinc vere christianum monitum est B. Brunnemann *de Proc. fori Inst. & abbrev. C. I. n. 12.* quando ait: *Quilibet in judicio acturus exploret conscientiam suam, non tantum an jure, sed etiam an bona cum conscientia & sine anima lesione item moveat & in judicio externo victoriam reportare posse: nam si hoc non fiat, licet vel mille judicata pro se habeat, non tamen in anima foro obtinebit,* sed

*sed causa cadet, forte cum eterno suo malo : nec enim ut vulgata J. C. regula habet , peccatum dimittitur , nisi restituatur ablatum ; quod si igitur actio movenda prius in conscientia foro intenderetur , minorerem litium segetem haberemus : Simile judicem esto , de læsione in emitione licita . Evidem legibus civilibus proditum est , In pretio emptionis venditionis naturaliter licere contrahentibus se circumvenire . l. 16. §. 4 ff. de min. l. 22. §. 3 ff. Locati . & secundum l. 8. C. de Rest. Vend hęc est emptionis & venditionis substantia , quod emptor viliore comparandi , venditor cariore distribendi vorum gerentes , ad hunc contractum accedant , vixz post multas contentiones paulatim venditore de eo , quod petierat detrahente , emtore autem huic , quod obtulerat addente , ad certum consensuum premium . Ast hic denuo res ad cuiusvis reddit probitatem : nam si judices in quamvis læsionem , quę hic contingit , animadverterent , rerum commercia nimis interturbarentur , & tribunalia hujusmodi litibus terminandis vix ulla sufficerent : quædam ergo iniquitas ex conditione hominum impune transit , neque adversus eandem remedium comparatum invenitur . Non tamen propterea putandum , recte fieri , si cum proximi iactura atque damno quis ditescat ; videant potius contrahentes , quod rectissime adnotavit B. Dn. Schröter Cas. Cons. XX. ne vulnus conscientie sua , quares est simplicissima , secundum Apostolum , in gentibus factum accusans , & defendens unquam infligant , & scienter contum illam committentes adficiant ad gehennam , que sulphure ac pice contractam hac ratione pinguedinem ita aksumat , ut eam recipere prius non liceat , donec ad ultimum denique obolum satisfecerint . Sane voluntas DEI est , τὸ μὴ ἵπτεθεῖν καὶ πλεονεκτεῖν ἐν τῷ πρόγυμνῳ τὸν αὐδελφὸν αἴπερ διότι ἐκδίκος ὁ κύριος περὶ πάντων τέστω . I. Thess. IV. 6. In contractibus natura æqualitatem imperat , & ita quidem , ut ex inæqualitate jus oriatur minus habenti , qui vero plus æquo stipulatus est , rem ad æqualitatem reducere , expobi & pīi hominis officio tenetur , Grot. de J. B. & P. L. III. c. X. §. V. n. 2. Pour être véritablement honnête homme , ait Autor*

dii

du point d<sup>e</sup> honneur , in fine p<sup>r</sup>efat. il faut l<sup>r</sup>tre en toutes choses & dans tous les tems & les <sup>é</sup>tats de la vie. Et Viri boni est, ex Antipatri sententia , apud Cic. de Off. III, 12. semper ad id contendere , quod natura <sup>equus</sup> , melius , humanus dicitur. Quamvis ergo avaritia rationibus defensionis haud careat, & multa pr<sup>d</sup>andi nomina non absque honestatis specie excogitentur , variisque artificiis pretia rerum intendantur , quod in primis accidit , si necessitas urgeat , vel cupiditas rem habendi animadvertiscat , quae depravata hodie consuetudo est; attamen turpissimæ ha<sup>r</sup> fraudes atque deceptions tum juri naturæ contrariantur , tum DEUM vindicem habent: in illis enim quæ in hoc seculo non vindicantur , divina judicia locum inveniunt. *Can. 7. Caus. VI. qu. I. Conf. Dn. Stryk. de For. Cons. C. V. n. 118. & de Jure Lic. C. II. n. 78. add. Puffendorff. de J. N. & G. L. V. C. III. §. 10.* Tandem parum honesti videntur & illi , qui injurias ab aliis acceptas nimis rigide ulciscuntur , & ut ab ignominia , quam sibi illatam arbitrantur , fesse liberent , ad duellum alios provocant. Hoc quidem olim licetbat , & quod mireris , ipsi Reges tragicis hisce spectaculis sapient spectators aderant. Ita enim refert Autor du Tr. du point d' hon. p. 162. ubi de duellis agens ait: *Nous avons même des exemples , que des Rois ont voulu honorer de leur presence ces sortes de tragédies. Henry second encore infecté de ces mauvaises maximes , non seulement permet à Jarnac & à la Chasteigneraye de se battre , lui qui étoit obligé , de l' empêcher par un devoir indispensable ; mais fit lui même , selon les paroles de l' historien , dresser des lices , & en voulut être spectateur avec toute sa cour , comme si c' ést été un Roy idolâtre , qui se fut fait un plaisir d' un combat de gladiateurs. Hist. de Fr. Henry II. ann. 1547. & 1556.* Ast idem scriptor in sequentibus impietatem duellorum demonstrat , atque evincit , Majestatem iisdem ladi , neque salva conscientia ab ullo Rege , quippe divinis legibus contraria , tolerari posse. Id quod quidem Principes jam diu optime agno-

agnoverunt, unde dudum hæc non amplius fuere licita, sed saluberriinis constitutionibus huic malo obviam itum. Neque etiam dubitandum, belluinos istos congressus, qui cum naturæ divinisque legibus pugnant, nil honesti in se habere, sed honorem pariter atque conscientiam gravissime lacerare. Vid. Schreter *Cæs. Cons.* *LI.* Interim vehementer homines latantur, si contigerit, sumpsisse de quopiam vindictam & incredibilis ex hac ultiōne solet percipi delatatio, adeo ut pro ea in ultimum vitæ famæque discrimen fese conjiciant. Nam ex Publio Mimo:

*Læso doloris remedium inimici dolor.*

Idque vel morituris ultimum ultiōnis remanet solarium. Unde Catilinæ conjuratorum Ducis hæc postrema ad coniurationis socios verba referuntur: *Quod si virtuti vestra fortuna inviderit, cavete, ne inulti animam amittatis.* Tac. ann. *IV.* Et Juvenal. *Satyr.* *3.*

*Vindicta bonum vita jucundius ipsa.*

*Et nil dulcissus esse ultiōne lœsis,* Quintil. scribit. An autem quæ ex tali principio procedit actio, honesta sit, quam plurimi parum curæ habent. Evidem diserta verba sunt §. 10. *Infl. de Injur.* *de omni injuria eum*, qui passus est, posse vel criminaliter agere vel civiliter, quæ confirmantur *I. 7. §. 6. I. 37.* *§. I. & I. ult. ff. eod.* Moribus etiam actio injuriarum non tantum criminaliter, sed sapienter etiam civiliter intentatur. Vid. Schultz. *ad h. t.* Hæc tamen nondum evincunt; ultiōnem, quam hac ratione leges admittunt, omnino esse probandam, namque honestatis studiosus non est vindictæ cupidus, nec nisi necessitate quadam adactus, quod adversus ipsum peccatum fuit, ulciscitur. Ita, si quidem realis viro bono injuria illata fuerit, damnum hoc legitimo juris remedio prosequitur, ne malitia facinorosorum indulgere suaque abjicere videatur. Porro, si in publico officio constitutus, siue modi maledictis proscinderetur, ut alii exinde scandalum facile accipere possent, hic ne finit stram

stram de se suspicionem tacendo ipse sibi accersat, atque sibi & publica rei noceat, tales injurias salva honestate vindicat. Simili ratione quilibet bonus falso obiectum crimen a se amovet, ea saltim intentione, ut sux innocentia consulatur, non vero ut adversario molestias creet, atque dolori & ira sux satisfaciat, talis enim vindicta prorsus in honesta est, quippe qux non tantum in sacris litteris, sed ab ipsa quoque recta ratione damnatur, prout ipsorummet gentilium testimonia id comprobant. H. Grot. de J. B. & P. L II. C. XX. §. 5. Dn. D. Buddeus Inst. Theol. Moral. P. II. S. IV. §. XXII. Hinc recte Bachovius ad §. fin. n. 2. Inst. de Act. statuit, vix ullam satis justam causam esse Christiano agendi injuriarum, nisi ubi hoc fieri publice quodammodo interest: vel in exemplum, si alii ab ejusmodi perniciaria absterrantur, vel ob personam ejus, qui injurya affectus, veluti si publicum officium administraret, quem ab injuryis immunem & integrum fama haberi, publice interest, ne contemptui exponatur, & administrando muneri suo minus reddatur idoneus, vel ex conscientiae indignis officiis publicis habeatur. add. Dn. Stryck. de Foro Consc. C. VI. n. 55. Qui vero levi saltim contumelia lacescitur, vel injurya notatus fuit, is ex virtute magnanimitatis, aut ex praescripto Christianae perfectionis amore, alteri injurias condonet ignoscaturque; Tantum enim abest, ut ex norma virtutis operans odia in finu foveat, ut potius gaudeat de occasione, qua humilitatem longanimitatemque suam, ad Christi Salvatoris exemplum, exercere queat. Elegantissime hanc in rem differit sape laudatus Autor du point d'bon. \*

\* Dignissimus sane hic libellus esset, qui in pharisorum Versaretur manus, scopus enim, ad quem autor collimat, est, ut inter christianos veram charitatem stabiliret, cumque hec non aliunde magis, quam per vanam mundi gloriam

p. 273. Le véritable point d' honneur allegue la loy du Christianisme, qui excuse la faute & le coupable, & qui ne fait point confisier l'honneur, a se venger d'une offense, quoy que ce fust même légitimement, mais à la pardonner. Et ainsi la raison convaincuë, elle même fait peu à peu condescendre la nature à écouter la religion, ou la sagesse Chrétienne. Elle luy fait voir, combien il est glorieux & louable, de regarder les autres hommes dans soy même, & de nous regarder nous même dans les autres ; de regarder nos propres fautes & nostre foibleſſe, dans leurs foibleſſes & dans leurs fautes, de les regarder, dis-je, comme nous nous touchant de consanguinité par la nature, de faire reflexion que l'honneur ne se perd pas par des injures, qu'on nous dir, mais par les mauuaises actions, que nous faisons, & que si la conscience ne reproche rien, tous les reproches de tout le monde ensemble ne peuvent pas ôter l'honneur : Elle luy fait voir contre les sentimens du quant-a-moy, que celuy qui souffre patiemment une injure, augmente par cela même, qui est hors du commun, son honneur & sa réputation, bien loin de la diminuer ; & qu'il importe peu, que quelques-uns qui ont le jugement corrompu, tournent par des noms inventez cette vertu en deshonneur ; puisque ces sortes, de jugemens mal faits ne changent ny la chose en soy, ny la véritable opinion que

gloriam, cui homines tantopere inbiant, turbetur, in eo est Autor, ut lucricitatem honoris mundani offendat, que pro eo allegari solent argumenta refutet, quis verus Christianorum honor esse debet, comprobet, & que subinde hic committuntur, fallacias detegat: que singula rationibus philosophicis sufficiat, ipsius revelati verbis dictis solide confirmat, media quoque ad finem bunc facientia cap. ult. luculent: proponit. Parisis 1676. 12. Tit. suite de la Civilité Françoise ou Traité du point d'honneur & des règles pour converser & se conduire également avec les incivils & les facheux.

que l'on en doit avoir ; non plus que le sucre ne change pas , ny ne laisse pas d' être doux , encore qu'un malade , qui a le goust dépravé , le trouve amer . Ex his quoque judicium ferri potest de altero illo injurias vindicandi modo , quem itidem judiciorum praxis adprobavit , vulgo Retorsionem vocant , quæ quid sibi velit , facile est intelligere ex responso Scabinorum Lipsiensium . M. Febr. 1636. in causa J. O. contra N. N. zu Wittenberg . Hat J. O. in seiner Retorsion Schrifft sich dieser Formalien gebraucht ; Es wolte N. N. wie auch allen demjenigen / so der Injurien Autores und Anstifter / als boshaftigen Injurianen und Diffamanten / die uff ihn erlogene fälschliche und erdichtete Ausslage / in ihren eignen Hals und Busen darauff sie dieselbe gespeyet / zu verschlucken und zu verdauen wieder zurücke geschoben haben / dergestalt und also / daß er sie so lange vor höchst straffliche Ehrenschänder und für diejenige davor er gescholten warden ic achte / und halte / bis sie uff ihn wie recht dergleichen erwiesen und ihn durch Urteil und Recht überzeuget hätten ic . So wird solche Schrifft vor eine zu recht zugelassene Retorsion gehalten / und es mag der Retorquent J. O. ob hätte er der Sa che zu viel gethan / und den Modum retorquendi überschritten / mit bestaudie nicht beschuldigt werden . V. N. V. Sane a turpisissimo hoc omnis Christianæ Charitatis neglectu & malevolo erga proximum animo invidia stimulis adeo agitato , quilibet bonus abhorret ; indigna plane hæc sunt , quæ inter Christianos audiri debeant . Sunt tamen quibus placent , qui propterea eorum patrocinium suscepserunt , sed solide eos confutat Dn. Stryk. de For. Consc. C. VI. n. 6. unde plura peti possunt . Instituto nostro , quæ dicta sunt , sufficient . Faxit ter Optimus terque Maximus DEUS , qui olim mundo aderit justissimus Judex , atque impium genus

cæci ruina æternisque cruciatis premet, ut post elemen-  
ta calore soluta & cælos in ejusdem adventu magno im-  
petu disruptos, nos a mortuis excitati, post extremum  
illud atque ultimum judicium, in eorum numero inven-  
niamur, qui ad Thronum agni electi in omnes æternita-  
tes optatisimam illud: ἡ σωτηρία τῷ θεῷ οὐαὶ τῷ καθημένῳ  
ἐπὶ τῷ θρόνῳ, καὶ τῷ Λενιᾷ; acclamant. Huic, qui Rex  
Régum, Dominus Dominantium existit, pro divino,  
quo hæc tenus nobis quam clementissime  
adsumit, auxilio, fit

## LAUS HONOR ET GLORIA

### F I N I S.



SS (o) SS



*Nobilissimo atque eruditissimo*  
**CANDIDATO**  
**DN. VLRICO MAR-**  
**BACHIO,**  
S. P. D.  
P R A E S E S.

**N**Efas ducerem non gratu-  
lari Tibi , Clarissime  
MARBACHI , cuius  
virtus ac eruditio , Parenti maxi-  
me

me reverendo atque excellentissimo æmula , latere nescia , hoc omnino officium a me deposcit . Dignum Te scilicet omni tempore præbuiisti , qui Argentoratum patriam coleres , quam nos urbem ab argento sic appellatam , & Romanorum veterum ævo ærarium locupletissimum fuisse accepimus . Tibi autem ex hoc ærario ejusmodi divitiæ obtigerunt , quæ non inconstantes ac fluxæ sunt , sed perpetuo & sine amittendi periculo possidentur , decusque Tibi & gloriam sempiternam promittunt . Has ingenii Tui & doctrinæ multijugæ opes , tum in urbe natali , tum in academiis aliis partas , & specimine jam illustri probatas

batas mox in literatorum societibus inque curia & foro expones,  
& majora virtutis ac scientiarum  
præmia reportabis. Quod & e-  
go, præstantiæ Tuæ testis, voveo,  
& totus Jureconsultorum Sena-  
tus mecum precatur. Vale!  
Dabam Jenæ, die XII. Julii An.  
Christ. M DCC XII.

Ergo





**E**rgo tot egregiis colophonem,  
hunc addere pugnis,  
Et meritos Titulos inde referre  
paras?

MARBACHIDE, Alsfatici quem tanquam no-  
bile Pindi  
Depositum in præsens terra Thuringa-  
tenet.

Tesemel atq; iterum vidi rumore secundo  
Pugnantem in docto pulvere nostra  
Schola.

Hinc Tibi Jenenses paria ad certamina  
Musæ

Victori plausus sæpe dedere novos.  
Sed quæ suscipitur nunc , decretoria pu-  
gna est,  
Vnde datur studiis palma suprema tuis.

Hoc age ! Pieros consummature triumphos :

Plaudit Fama Tibi , fertaque necit Honos.

Inde coronatum patrius mirabitur Ellus ;  
Servabit nomen ripa Salana tuum.

Imples ipse Patris Venerandi vota , probasque

Te fecisse , tuum quod fuit. Euge !  
bene !

Cætera jam committe DEO ; dabit Ille ,  
quod optas ,

Vt pro sis aliis largiter , atque Tibi ,  
Quo - Te - cunque loco , quaque in statione  
jubebit

Tam bene collectas promere mentis  
opes .

Nobiliss. DN. MARBACHIO , post tot alios Academicos  
conflictus , in incluta Universitate Jenensi Disputationem  
Inauguralem Juridicam proponentis , Feliciter ! accinit  
ex Patria

SAMVEL ARTOPOEVS , P. L.

**Q**ui nulla ingreditur macula suffus,  
amatque  
Ex animo rectum , justitiam-  
que colit;  
Cui neque cor fraudes agitat , neque sub-  
dola lingua est;  
A quo se læsum dicere nemo potest;  
Quem mutare fidem nunquam jactura,  
coëgit :  
Vis illi exterior nulla nocere potest.  
Non, quæcunque homines spargunt con-  
vicia pravi,  
Illi unquam animum terrificare  
queunt.  
Non , si illum exagitent osores undique  
amici.  
Omnia pro Christi nomine ludus e-  
runt,  
Felices , quorum constanter mens ita  
sensit .:  
Præmia namque pios quanta subinde  
manent?

Eloquar , an tacitus fileam ? perdulcis  
amice ,

In Te, MARBACHI, tale videre licet .  
Aspice quam facili post nubila rideat ore  
Sol , atque ex spinis quam rosa dulcis  
eat .

Perge , velut pergis, Tibi gloria crescat  
in horas

Æquatura brevi *nomina magna Patrum.*  
Hinc pro more Tibi grator voveoque :

*Supremo*  
*Vt Tua sit semper cura placere DEO.*

Deproberab.

M. Jo. ERNESTVS STOLTE.



VD 18

**ULB Halle**  
006 754 961

3

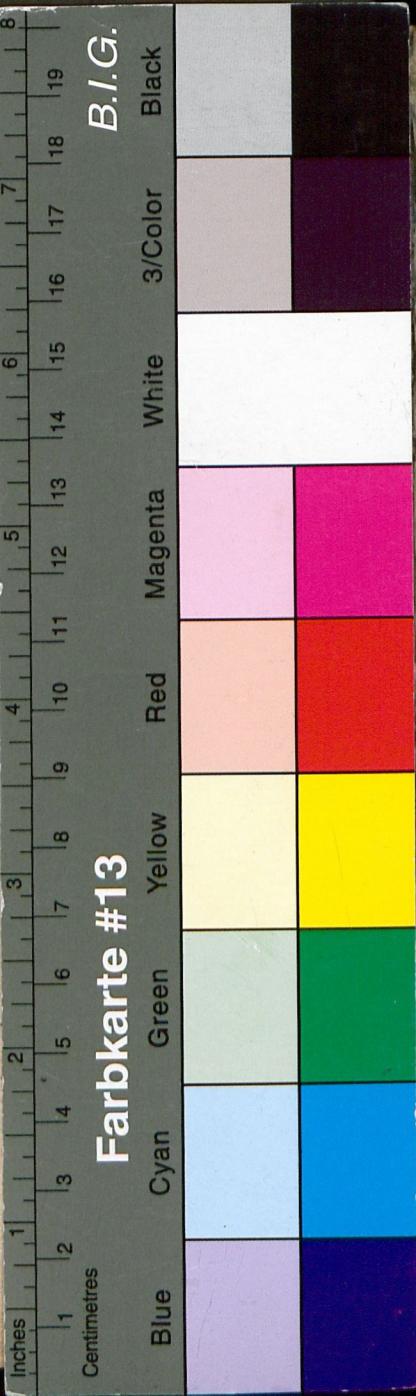




Universitäts- und Landesbibliothek Sachsen-Anhalt

urn:nbn:de:gbv:3:1-232757-p0100-2

DFG



26  
13

I. N. J.  
 DISSERTATIO INAVGVRALIS  
 DE  
**DEO COMMISSIS,**  
*Was Gott befohlen wird / 1712, 24*  
 QVAM  
 DIRIGENTE SVMMO RERVM ARBITRO  
*RECTORE MAGNIFICENTISSIMO*  
 SERENISSIMO PRINCIPE AC DOMINO  
 D O M I N O  
**GVILIELMO HENRICO,**  
 DVCE SAXONIAE, IVLIACI, CLIVIAE AC MONTIVM,  
 ANGARIAE, WESTPHALIAE ET RELIQA.  
**IN ALMA SALANA**  
 ITA DECERNENTE ILLVSTRI JCTORVM ORDINE  
 P R A E S I D E  
*VIRO ILLVSTRI ATQVE MAGNIFICO*  
 D O M I N O  
**CHRISTIANO WILDVOGELIO,**  
 JCTO CONSUMMATISSIMO,  
 CONSILIARIO SAXO-ISENACensi INTIMO, CVRIÆ PROV. ET  
 SCAB. NEC NON FACVLTAT. JVRID. ASSESSORE GRAVIS-  
 SIMO, VT ET ANTECESSORE CELEBERRIMO,  
*MAECENATE PIA DEVOTIONE AD CINERES COLENDO*  
**PRO LICENTIA**  
 SVMMSOS IN VTROQVE JVRE HONORES CAPESSENDI  
*D. XVI. JULII M. DCC. XII.*  
 PLACIDAE DISQVISITIONI EXPOSIT  
**VLRICVS MARBACHIVS, ARGENTORAT.**  
*I E N A E, LITTERIS MVLLERIANIS.*